पूज्यपाद अभ्देय श्री सीतारामशरणजी (श्रीमास्टर साहब श्री हनुमत सदन जी) की पुनीत सेवामे

ॐ नमः भगवते श्रीमते रामानन्दाय

विद्वद्धुरीण श्रीश्रीनिवासाचार्यजी महाराज विरचितम्

श्रीजानकीचरणचामरस्तोत्रम्

16673

उस पर

की अन्वयानुयायिनी गद्यात्मिका टीका और

ः प्रच्छालिनी पद्यात्मिका टीका

टीकाकार

मानसतत्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी–'रामायणी

वेदान्तभूषण, साहित्यरत्न' श्रीरामग्रंथागार मणिपर्वत श्रीअयोध्याजी

प्रकाशक

श्रीविश्वम्भरप्रसादजी एम० ए० उपनाम श्रीभरतशरणजी

भूतपूर्व प्रोफेसर गवर्नमेण्ट कालेज अजमेर

वर्तमान निवास श्रीदिव्यकलाकुंज श्रीअयोध्याजी

टीकाकार एवं प्रकाशक दोनों स्थानों से पुस्तक प्राप्त हो सकती है।

सादर समर्पण

ज्येष्ठ कृ० ७ सं २०१३ दीन भरतशरण

ॐ नमः भगवते श्रीमते रामानन्दाय

विद्वद्धुरीण श्रीश्रीनिवासाचार्यजी महाराज विरचितम्

श्रीजानकीचरणचामरस्तोत्रम्

उस पर

सरला नाम की अन्वयानुयायिनी गद्यात्मिका टीका और

रजः प्रच्छालिनी पद्यात्मिका टीका

टीकाकार

मानसतत्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी–'रामायणी

वेदान्तभूषण, साहित्यरत्न' श्रीरामग्रंथागार मणिपर्वत श्रीअयोध्याजी

प्रकाशक

श्रीविश्वम्भरप्रसादजी एम० ए० उपनाम श्रीभरतशरणजी

भूतपूर्व प्रोफेसर गवर्नमेण्ट कालेज अजमेर

वर्तमान निवास श्रीदिव्यकलाकुंज श्रीअयोध्याजी

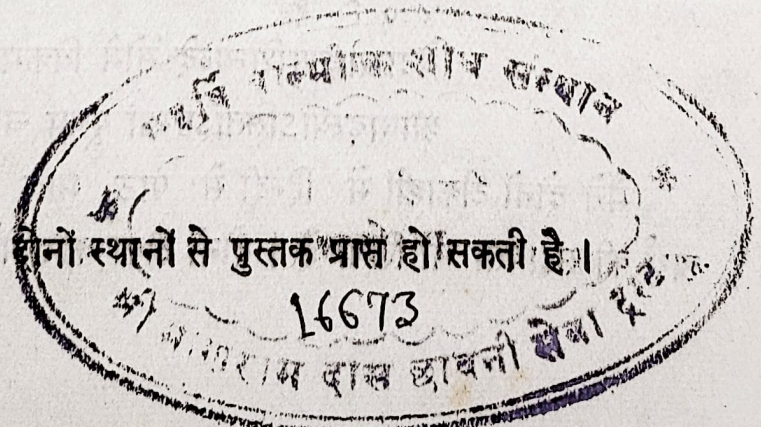

टीकाकार एवं प्रकाशक दोनों स्थानों से पुस्तक प्राप्त हो सकती है।

प्राक्कथन

खेलि रहीं पय में पिय संग हिं ग्रीषम ताप बुझावन को।
बूड़ि के तीर 'कुमार' निकुञ्जकढ़ीं छलि कै मन भावनको॥
जानि सिया मुख राम सुधाधर बिंब हैं उत्सुक चुंबनको।
देखि कढ़ीं मुसुकाती सिया मुद मंगल मोद करैं जन को॥

सम्मान्य रायसाहब बाबू श्री राजेन्द्र प्रसाद जी ने सम्वत १९९४ वि. के आश्विन नवरात्र में मुझे सन् १८८८ ई. की छपी हुई "श्री जानकी चामर" की सटीक पुस्तक देकर आग्रह किया कि इसकी भाषाटीका आप कर दीजिये छपने का प्रबन्ध सरकार करैंगे ही मैंने कहा कि यह पुस्तक तो भाषाटीका है ही, यदि अब अप्राप्य हो गई हो तो पुनः इसके ही छपने का प्रबंध कीजिये। तब श्रीरायसाहब ने कहा कि आप स्वयं ही इस टीकाको देखकर तब कहिये कि टीकाकी आवश्यकता है या नहीं। मैंने देखा कि उस टीका में शब्दार्थ नहोकर पुरानी भाषा में संक्षिप्त भावार्थ मात्र है और वह भी अन्वय के अनुसार नहीं। अतः टीकाकी आवश्यकता प्रतीत हुई। टीका कारने ग्रंथकार का कुछ भी परिचय नहीं दिया है, अपने टीका करने का भी समय नहीं निर्दिष्ट किया है। मार्च सन् १८८८ ई० में लखनऊ में छपी है, टीकाकार पं० श्री रामकान्ताशरणजी नित्यकैंकर्य प्राप्त स्वामी श्री युगलानन्यशरणजी महाराज के प्रशिष्य थे। टीका का नाम 'शृङ्गार रस मालिका' है। खोज करने पर एक लिखित 'धाविका' नाम्नी संस्कृत टीका भी प्राप्त हुई, जिसके कर्ता श्री दिलारामात्मज पं० श्री रामकृष्णजी थे। वह टीका सं० १९०४ वि० में बिरची गई है, टीकाकार ने अन्त में टीका का काल एवं नाम दिया है—

४०९१
वेदाभ्राङ्कशशिन्यब्दे सोमे विक्रमभूपतेः।
आषाढ़स्याऽसिताऽष्टम्यां पूर्णा चामरधाविका॥

मैंने दोनों टीकाओं में हिन्दी से पाठ मात्र परञ्च संस्कृत टीका से कुछ अर्थ की सहायता भी लिया है। दोनों टीका कार मेरे पूज्य हैं, दोनों के चरणों में

मेरा शतशः प्रणाम है। ग्रंथकार का परिचय न तो किसी टीका में है और न ग्रन्थ कारने ही अपना विशेष परिचय अथवा अपने देश काल का निर्देश किया है। ग्रंथ की पुष्पिका में अपने लिये जो "श्री मारुति सिद्धान्त विरहमाण०।" दिया है उससे इतना तो निश्चित है कि ग्रंथकार श्री संप्रदायानुयायी अर्थात् श्री रामानन्दीय श्री वैष्णव थे क्योंकि श्री (रामानन्द) सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्यकोई भी सम्प्रदाय आज कहीं भी श्री मारुति सिद्धांतानुयायी नहीं है और पूर्वकाल में भी नहीं थी। श्री सम्प्रदाय की गुरु परंपरा में श्री मारुतिजी ही प्रथम आचार्य हैं, श्री सीताराम जी तो इष्ट देवता हैं।

दूसरी बात जो ग्रंथकार ने लिखा है कि "विद्वद्धुरीण कौन्तेयाचार्य सूनु श्री निवासाचार्य विरचितम्०।" इससे मालूम होता है कि ग्रन्थकार गृहस्थाश्रमी श्री वैष्णव थे, क्योंकि पिता के नाम के साथ स्वनामोल्लेख किया है. यदि विरक्त होते तो गुरुका नाम देते, पिता का नहीं। बस इस से इतना ही ज्ञात होता है कि ग्रंथकार गृहस्थाश्र मी अथ च श्री सम्प्रदायी श्री रामानन्दीय श्रीवैष्णव थे। अस्तु

कई कारणों से उक्त श्री राय साहबजी के जीवनकाल में 'सरला' का आरम्भ नहीं किया जा सका। सं० २००१ वि० की श्री रामनौमी पर औरैया (इटावा) निवासी श्री राघवदासजी ने पुनः प्रेरित किया तो श्रीराघवेन्द्र सरकार ने जैसी टीका करवाई वह अब प्रकाश में आरही है।

आजसे पाँच वर्ष पूर्व एक दिन श्री रामकिशोर शरणजी महाराज (हनुमत निवास) से प्रसंग वश मैंने इसकी चर्चा की तो अपने बताया कि दिव्यकला कुंज के श्री भरत शरणजी इसकी इसी ढंग की टीका लिख रहे हैं और वे स्वयं छपवायेंगे। मैंने पुनः कभी किसी से इसकी चर्चा इसलिये नहीं किया कि टीका से प्रयोजन है सो एक सज्जन टीका करके प्रकाशित करही रहे हैं। अभी उस दिन श्री कनक भवन में एक वयोवृद्ध सज्जन मिले बातचीत से ज्ञात हुआ कि आप गवर्नमेण्ट कालेज अजमेर के भूतपूर्व प्रोफेसर श्री विश्वम्भर प्रसादजी माथुर हैं अब भरतशरण नाम से दिव्यकलाकुंज में रहते हैं। मुझे पाँच वर्ष पूर्व की बात स्मरण आगई मैंने पूंछा कि क्या आपकी टीका श्री जानकी चरण चामर पर छप गई ? प्रो० सा० ने कहा कि मेरा संस्कृत में प्रवेश नहीं

और प्रकाशित हिंदी टीका से सहायता नहीं मिलती, यहाँ अमुक-अमुक प्रख्यात पण्डितों के पास गया, पर कोई भी अपना समय देकर मुझे सहायता नहीं देते; अतः टीका नहीं हुई। क्या आप सहायता देंगे? मैंने कहा आप मेरे आश्रम पर आकर "सरला" टीका देखिये, शायद आपको पसन्द आजाये। कई दिनों के बाद प्रो० सा० विश्रामबाग (मणिपर्वत के मेरे आश्रम में) आये और "सरला" को देखकर बडी प्रसन्नता से छपवाने का भार ले लिया, और यह भी आग्रह किया कि प्रत्येक श्लोक का पद्यानुवाद हो जाता तो उत्तम होता उस आग्रह के परिणाम स्वरूप रजः प्रच्छालिनी नाम से तुकबन्दी भी एक सप्ताह में कर दी गई जिसका संकेत पद्यों के साथ "र० प्र०" है। मैं तो सचमुचही —

कवितरीति नहि जानहुँ कवि न कहावहुँ।

परन्तु— "निरस्त पादपे देशेऽप्यरण्डोऽपि द्रुमायते।"

के अनुसार जब तक कोई अन्य भावुक विद्वान् इस पर कोई सुन्दर टीका एवं पद्यानुवाद नहीं करते, तब तक तो प्रो० सा० तथा अन्य प्रेमियों को इसी पर सन्तोष करना ही पड़ेगा। प्रो० सा० ने तो उसी समय रुपया जमा कर दिया था परन्तु श्री किशोरी जू को अपनी वर्ष गांठि के सप्ताह में प्रकाश में लाना था इसी से छपने में इतना विलंब हो गया ज्ञात होता है।

मुझे विश्वास हो रहा है कि श्री जूके नित्य निकुंज सेवा में प्राप्त रायसाहब-जी इसे प्रकाशित देखकर परम प्रसन्न होते रहेंगे।

भगवद्भागवतानुचर

रामकुमारदास

वैशाख शुक्ला ३ अक्षयतृतीया रविवार २०१३ वि०।

श्रीमते रामानन्दाय नमः

श्रीगुरुवे नमः

श्रीजानकीजीवनाय नमः

—:o:—

मुक्तामल्लि स्ववल्लि तारकतति श्रीलक्ष्मवक्षः स्थली,
सूत्रामोपलदर्पणप्रतिफलत्सीताऽऽस्यशीतद्युतिः।
अंकालंकृति मैथिली स्मितसमुन्मीलत्कपोलस्थली,
रत्नाऽऽदर्श विशत्प्रसन्नवदनो देवः प्रसन्नोऽस्तु नः ॥१॥

टीका कर्तुः मंगला चरणम्—

प्रभापारावारौ सुभग सुकुमारौ सुमधुरौ,
यथायोग्याकारौ सकलसुखसारौ सुरुचिरौ।
प्रवीनौ स्वाधीनौ नवनिधिनवीनौ निरुपमौ,
सदासीतारामौ ममहृदि सवामौ विहरताम् ॥१॥

समस्तलोकेश्वरि सर्वतारिणी,
विमोहमत्तेभमदप्रहारिणी।
यतीन्द्रहृत्कंज विकाश कारिणी,
पुनातुमां रत्नगिरौ विहारिणी ॥ २ ॥

महामति मलीनोऽपि श्रीमद्गुरु प्रसादतः।
सीता चरण चमरस्य सरला टीका वितन्वते ॥ ३ ॥

मातु सीय अवधेश्वरी, वत्सलता भरि-पूरि।
शिशु अबोध निजमोहि गुनि, क्षमिय चपलता भूरि ॥ १ ॥
कल्याणी वाणी परा, विद्याऽऽद्या चितचारु।
नाद वाद संवादिनी, अम्ब कृपाऽम्बुहिं ढारु ॥ २ ॥

करि समतल कल मति धरा, शक्ति उपज भरि भाव ।
वरसि गिरा धारा जननि, काव्य विपिन लहराव ॥ ३ ॥
अखिल ज्ञान परिछिन्नता मति विभिन्नता भेद ।
मातु हटाइ मिटाइये, सबै खिन्नता खेद ॥ ४ ॥
बहुधा मुधा कुभावना, चित्त चित्र चपलाइ ।
असम्बद्धता ज्ञान की, देबी देवि ! मिटाइ ॥ ५ ॥
तुव चरणन चामर रुचिर, कठिन सुर गिरा जानि ।
सरला नर वाणिहिं लिखत, राघव आज्ञा मानि ॥ ६ ॥

देवः (दिव्यक्रीडनशीलः श्रीरामः)	दिव्यक्रीड़ा करनेवाले श्रीरामजी
नः	हमारे ऊपर
प्रसन्नः अस्तु	प्रसन्न होवैं ।
(कथं भूतः स श्रीरामः)	(वे श्रीरामजी कैसे हैं कि)
* मुक्ता मल्लि	मोतियों के मालाओं की
सु अवल्लि	सुन्दर-पंक्तियों (लरों, रूप)
तारक तति	तारा गणों की, पक्तियों से (सुशोभित)
श्री-लक्ष्म	श्रीवत्स के चिन्ह से चिन्हित (आकाश सदृश स्वच्छ एवं विशाल श्रीरामजी के)

---

* मेघ, हस्ती, मत्स्य, सर्प, बाँस, शंख, वाराह और सीपी इन आठ आकरों से मुक्ताफल की उत्पत्ति होती है—

जीमूत करि मत्स्याहि वंश शंख वराइजाः ।
शुक्त्युद्भश्च विज्ञेया अष्टौ मौक्तिक संज्ञकाः ॥४॥
(अगस्तिमत मुक्ता परीक्षा प्रकरण)

उन आठों में सीपी से उत्पन्न मुक्ता (मोती) सबसे महँगा, उत्तम और प्रसिद्ध है—

तेषामेकं महर्घस्तु शौक्तिकालोक विश्रुता ॥५॥
(अ. म. मु. प. प्र.)

वक्षःस्थली	वक्षस्थल (रूप)
सूत्रामा	इन्द्र (सूत्रामागोत्रभिद्वज्री)
उपल	पत्थर अर्थात् इन्द्रनीलमणि के
दर्पण	मुकुर—शीशे में
शीत द्युतिः	अमृत स्रावी शरत्पूर्ण चन्द्र के समान
सीता + आस्यः	श्रीसीताजी का मुख-मण्डल
प्रति फलत् ।	प्रतिबिम्बित (प्रकाशित) हो रहा है ।
(पुनश्च)	और श्रीरामजी की
अंक + अलंकृति	गोद को सुशोभित करती हुई
मैथिली	श्री मिथिलेश राजकिशोरी जू के
स्मित	मन्द मुसुक्यान युक्त
समुन्मीलत्	अत्यन्त विकसित
कपोलस्थली	कपोल (गंड स्थल) रूप
❀ रत्नाऽऽदर्श	मणि दर्पण (काच दर्पण नहीं) में
विशत्	प्रवेशित—प्रतिबिम्बित हुआ भया
प्रसन्न वदनः	जिन श्रीरामजी का विकसित मुख
(रामः नः प्रसन्नः अस्तु)	शोभित है । ऐसे श्रीरामजी हम पर प्रसन्न रहें ।

र० प्र०—सुन्दर श्याम हृदै शुचि दर्पण मानो महा मघवा मणि राजैं ।
श्रीवत्सांक सुहीरनहार सतारन सीय मुखेन्दु विराजैं ॥
त्यों सिय गोद लसैं रघुनन्दन दर्पण सीय कपोल सुभ्राजैं ।
जहां प्रतिबिंबित आस्य अनिंदित रामकुमार हृदै मधि छाजैं ॥

"स एकाकी न रमते-पतिश्च पत्नी च द्विधाभवत्"

"सीता रामौ तन्मयावत्र पूज्यौ०"

"हेमाभया द्विभुजया सर्वालंकारयाचिता"

❀ गृहे चयस्मिन् वसथस्म यास्पदे वृथैवतस्मिन्मुकुरावरत्नणे ।
कपोल युग्मस्फटिकोपलोपमे तदीयकृत्यंकृयते हि वो जनैः ॥

(प्रपन्न कल्पद्रुम्)

श्लिष्टः कमल धरिण्या पुष्टः कोशलजात्मजः ॥'

"गिरा अर्थ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
वन्दौ सीताराम पद जिनहिं परम प्रिय खिन्न ॥"

"सीता रामेति युगलं वस्तुतस्त्वेक रूपिणम्।"

इत्यादि श्रुतिस्मृति सद्ग्रन्थ प्रमाणों द्वारा प्रमाणित है कि श्रीसीतारामजी एक ही हैं, स्वानन्द विकासार्थ एवं—

उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना।

श्रुति के अनुसार उपासकों के लिये दो रूप से—पति-पत्नी रूप से अवतीर्ण हुए हैं। अतः ग्रंथकार अपने उपास्यदेव श्रीसीतारामजी की शोभा को परस्पर में सम्मिलित वर्णन करते हुए अपने ऊपर स्वहृदयाराध्य युगल-दम्पत्ति की कृपा चाहते हैं। ग्रंथारम्भ में श्रीरामजी का मङ्गलाचरण करके अग्रिम ११० श्लोकों से पुरुषकारस्वरूपा श्रीमिथिलेशराजनन्दिनी के श्रीचरणों के प्रत्येक अवयवों की शोभा वर्णन करके उन्हीं चरणों को अपना सर्वस्व परमोपाय मानकर परमोपेय परब्रह्म श्रीरामजी की कृपा चाहते हैं ॥ १ ॥

आयान्ती स्फुरदंगुलीयक हरिन्माणिक्य रश्मिच्छटा,
दूर्वाचर्वण जात कौतुक मृगीपोताऽनुकम्पाऽऽकुला।
मन्द स्मेर मुखाब्ज लुब्धमधुकृज्जम्बूफलाकर्षिणी,
खेलन्ती मणिबन्ध कीरशिशुना सीता कदा लक्ष्यते ॥२॥

आयान्ती	(भक्तों पर कृपा करने) आती हुई
हरित् + मणिक्य	हरे रंग के + नीलम जटित
अङ्गुलीयक	कोमल चरण की अँगुलियों के छल्लों से
स्फुरत्	प्रकाशित—जो
रश्मि + च्छटा	किरणों की + प्रकाश पुंज कान्ति जो
	पृथ्वी पर फैली है, उसको
दूर्वा	हरी हरी दूब समझकर
चर्वण + जात—	चरने के लिये उत्पन्न हुआ है

कौतुक—	आनन्द या उत्सुकता है जिसको ऐसे
मृगी पोत —	भोले भाले मृगो के बच्चों पर
अनुकम्पा —	दया करने के लिये आप
आकुला	आकुल हो रही हैं अर्थात् उन्हें देख कर उन पर दया कर रही हैं।
मन्द स्मेर	मन्द मुसक्यान युक्त
मुख + अब्ज	मुखमण्डल पर कमल के भ्रम से
लुब्ध + मधुकृत्	मकरंद लोभी भौरे मँडरा रहे हैं (उन भौंरों को)
जम्बूफल	जामुन का फल समझकर उनपर झपटता है जो
मणिबन्ध	हाथ की कलाई पर बैठा हुआ
(कीर शिशुः)	तोते का बच्चा (तब उसे)
आकर्षिणी	खींच लेती हैं अर्थात् उस तोते के बच्चे को उन मुख कमल पर मँडराते हुये भौरों पर झपटने नहीं देतीं और खींचकर
कीरशिशुनाखेलन्ती	उस तोते के बच्चे के साथ खेलती हुई
सीता	श्रीसीताजी का (हमें)
कदा लक्ष्यते	कब दर्शन होगा।

र० प्र०—पगनूपुर के मणि नील प्रकाश हृदै गुनि दूब मृगी शिशु धावै।
मुखमण्डल श्रीसरसीरुह पै मधु लोभी शिलीमुख त्यों मँडरावै।
कर कीर 'कुमार' जिन्है गुनि जामुन चाहत ज्यों उड़ि चोंच चलावै।
तिनहूँ पै कृपा करि खैंचि सुखेलति ऐसी सिया मोहि दर्श दिखावै।

इस श्लोक में भ्रांति-अलंकार का बहुत सुन्दर उदाहरण है और साथ ही करुणा एवं विस्मय का भाव भी स्पष्ट ही लक्षित होता है ॥ २ ॥

स्वबालाञ्जलिमुक्तमौक्तिक फलै र्जाताऽऽलबालां, सुधा—
सम्पृक्तैः सुरसिन्धुनिर्झर शतैः सिक्तांघ्रि मूलामहो।

अश्रान्तं सरयू तटी सुरतरोरंके कृतालंकृतिं,
कांचित कांचन कल्पवल्लिमवनेरुन्मीलितामाश्रये ॥ ३ ॥

स्वः + बाला	स्वर्गलोक की सुन्दरियों के
अंजलि	अंजलियों से (भेंट में समर्पित किये जाते समय)
मुक्त—	छूटे हुये
मौक्तिक फलैः जात	मुक्ता मणियों से बना है
आलबालाम्,	थाला (जिसका । तथा)
सुधा सम्पृक्तैः	अमृत मिले हुए
सुरसिन्धु—	श्रीगंगाजी या मानसर या क्षीर सिंधु के
निर्झर शतैः सिक्तः	सैकड़ों झरनों से सींचा गया है
अंघ्रिमूलम्	पाद मूल जिसका तथा
अश्रान्तम्	निरन्तर
सरयू तटी	श्रीसरयू नदी के तट पर रहने वाले
सुरतरोः अंके	कल्पवृक्ष (रूप श्रीरामजी) के गोद में
अलंकृतिम्-कृता	शोभा की वृद्धि किया है जिसने ऐसी जो
कांचित अवनेः	कोई एक, पृथ्वी से
उन्मीलिताम्	प्रगट हुई
कांचन कल्पवल्लीम्	सोने की कल्पलता को
अहो ! (अद्भुताम्)	आश्चर्य रूपा समझ कर
अश्रान्तम्	निरन्तर ही मैं
आश्रये ।	आश्रयग्रहण करता = शरणागत होता हूँ

र० प्र०—पद अर्चि महामणि अंजलि अर्पित सोई मनो चहुँ ओर सुथाला ।
सुरसिंधु भरे घट कोटि सुधायुत सींचत ढारि सदा सुरबाला ॥
सरयू तट कामद्रुमै लपटी महि ते कढ़ि स्वर्णलता अति आला ।
गुनि ताहि महामुद अद्भुत रामकुमार सु आश्रय लेत उताला ॥

इस श्लोक में श्रीरामजी को कल्पवृक्ष कह कर श्रीसीताजी को अद्भुत कल्पलता कह कर उन्हें श्रीरामजी की शोभा बढ़ानेवाली कहते हुए श्रीजी को

ही उपायोपेय स्वरूप से स्वीकार किया है। इस पद्य में उत्प्रेक्षा-अलंकार की छटा छहर रही है ॥ ३ ॥

प्रातः स्मरणीय श्रीगोस्वामि पाद ने भी बहुत पूर्व ही एक परमाद्भुत कल्प-वृक्ष की कल्पना किया है—

कनककुधर केदार बीज सुन्दर सुर मणिवर।
सींचि कामधुकधेनु सुधामय पयविशुद्धतर॥
तीरथपति अंकुर स्वरूप यज्ञेश रच्छ तेहि।
मरकतमय शाखा सुपत्रमंजरि सुलच्छि जेहि॥
कैवल्य सकल फल कल्पतरु शुभ स्वभाव सब सुख वरिस।
कह तुलसीदास रघुवंशमणि तौ कि होहि तुव कर सरिस॥

कवितावली उ० का० ११५

स्मेरेन्दीवर सुन्दरां परिवृतामस्तोक कोक श्रिया,
राजच्छैवल मंजरी जलरुहै रालोहितैर्मोहिनीम्।
इन्दूत्तुन्दिल दुग्ध सिन्धुविहरन्माधुर्यसिन्धून्मुखीं,
कामप्याकलये निरंकुशदया कैवल्य कल्लोलिनीम्॥ ४ ॥

स्मेर	मन्दमुसुक्यानयुक्त-मुखकमल में
इन्दीवर-सुन्दराम्	नीलकमल के समान-नेत्रों से शोभायमान
अस्तोक कोक	पुष्ट (स्तन रूप) चक्रवाक-द्वय की
श्रियापरिवृताम्	शोभा से युक्त (और जिसमें)
राजत्	शोभित हैं (रोम समूह रूपी)
शैवल मंजरीम्	सेवार की मंजरी अर्थात् जो रोमराजी रूपी सेवार से शोभित हैं। तथा
आलोहितैः	(अरुण पद और कर रूपी) सद्यः बिकसित लाल
जलरुहैः मोहिनीम्	कमलों से मनको हरण करते हैं और
इन्दु	श्रीसीताजी के मुखचन्द्र को देख कर
उत्तुन्दिल	बढ़े हुए-जैसे पूर्णचन्द्र को देख कर

दुग्धसिन्धुः	क्षीर सागर बढ़ा हुआ हो वैसे ही श्रीसीताजी के पूर्णचन्द्रमंडलवत् मुखचंद्र को देख कर बढ़े हुए-
माधुर्य सिन्धु—	परम माधुर्य रस समुद्र में सतत
विहरन्	विहार करनेवाले श्रीराम रूपी सिंधु के
उन्मुखीम्	सम्मुख अर्थात् उनसे मिलनेवाली या मिली हुई—
निरंकुश—	स्वार्थानुसंधान शून्य-निरहैतुकीय
दया—	दयावाली अर्थात् दया जल से पूर्ण
कैवल्य—	अद्भुत निर्वाण सुख की देनेवाली
काम् + अपि	किसी एक अद्भुत
कल्लोलिनीम्	नदी रूपा श्रीमिथिलेश राज नंदिनी जू को मैं अपने हृदय में
आकलये ।	आकलन करता हूँ अर्थात् उनकी उपासना तथा ध्यान करता हूँ ।

र० प्र०—मन्दमुसुक्यानि युत नैन नील कंजखिले,
कर पग लालकंज दया जलरूप है ।
चक्रवाक युग्म तुल्य शोभित उरोज पीन,
रोम राजी राजै शुभ्र शैवल स्वरूप है ॥
कोशल 'कुमार' रस सिंधु रिझवार राम,
सीय मुख चन्द्र चाहि चालै पर्व रूप है ।
पद निरवाण मयी सुधासरि सीय पद—
ध्याइ-अवगाहि लहै जीव निज रूप है ॥

इस श्लोक में श्रीविदेह राज किशोरीजी का वर्णन कैवल्यात्मिका नदी रूपेण किया गया है इसमें उपमेय का बोध उपमान द्वारा गुप्त रूप से प्रगट किया गया है ।

तीसरे चरण में अभूतोपमा भी हो सकती है । वह इसतरह "कि सुकोमल श्वेत परिधान युक्त शय्या तो बढ़ता हुआ फेनिल दुग्ध सिंधु है और "छवि समुद्र हरि रूप निहारी" श्रीराम रूप माधुर्य सिंधु है, श्रीसीता मुखचन्द्र है उस दुग्ध

सिन्धु के ऊपर विकसित पूर्ण चन्द्र श्रीसीतामुखचन्द्र को देख कर माधुर्य सिंधु तच्चन्द्रोन्मुख होकर आह्लादित होता है।" अभूतता यह है कि दुग्धसिंधु तो पृथ्वी मंडल से उमड़ा जिसपर चन्द्रमा पूर्ण कला से विकसित है और उस चन्द्रमा के उन्मुख अंतरिक्ष से माधुर्य सिन्धु हो रहा है ॥ ४ ॥

उन्मीलत्कमलोपरिस्थ कमल श्री विभ्रमं विभ्रतीं,
हंसोत्तंसऽवतंस हंसक-चमत्कारेण चेतोहराम् ।
गंगा संगत गंगया कृत परिष्वङ्गैस्तरङ्गैः स्थिरां
क्रामत् तामरसोल्लसद्रसधुनीं कामप्यवेक्षामहे ॥५॥

उन्मीलत् कमल—	खिले हुये कमल-के समान मुखमंडल के
१ उपरि कमलस्थ	ऊपर-नेत्ररूपी-कमलों की स्थिति है अर्थात् मुखकमल के ऊपर नेत्रकमलों को धारण करनेवाली श्री जनकराजनन्दिनि जू
२ श्री + विभ्रमम् विभ्रतीम् ३	लक्ष्मीजी के लीला को धारण करती हैं ।

१—सिंहलद्वीपीय नायिकाके—

कमलात्कमलोत्पत्तिः श्रूयते न तु दृश्यते ?

ऐसा प्रश्न करने पर उसी के नेत्र और मुख को कमल बताते हुये कालिदास जी ने कहा था कि—

बालेत्वन्मुखाम्भोजात्कथमिन्दीवरद्वयम् ॥

२—विभ्रम से यह भी अर्थ हो सकता है कि विशेष भ्रम से लक्ष्मीजी भी चकित हैं कि ये भी हमारे समान कमल धारण करती हैं एवं दूसरों को यह भ्रम होता है कि ये लक्ष्मी ही तो नहीं हैं ।

३—लक्ष्मीजी अपने कर कमल में सदैव एक लीला कमल को धारण किये रहती हैं । यही कमल के ऊपर कमल धारण करना है । श्रीजनकराजनन्दिनी जू भी अपने सतत प्रसन्न मुखकमल में नेत्रद्वय कमलों को धारण किये हैं, जिसे देखकर लक्ष्मीजी भी चकित होती हैं । सामान्यतः कितने लोग भ्रम से

हंस + उत्तंस + अवतंस — हंसों में श्रेष्ठ भूषण हैं [अथवा श्रेष्ठ हंसों के आकार भूषणों में बने हुये हैं।]

हंसक + चमत्कारेण — हंस के चमत्कार अर्थात् तुल्यता से (अर्थात् श्रेष्ठ भूषण हंसली धारण करने के चमत्कार से आश्रितों के चित्त को हरण करती हैं।

चेतो हराम्
गंगा संगत गंगया
कृतपरिष्वंगैः स्थिराम्

गंगा के साथ मिलकर अर्थात् एक गंगा का दूसरी गंगा से गंगा में मिली हुई स्थिर हैं। तात्पर्य यह है कि चम्पक किंवा सुवर्णवत् समुज्ज्वल आपके श्री अंग पवित्र गंगा रूप हैं। कंठ में जो मोतियों की माला धारण किये हैं वह आपके श्रीअंग के ही तद्रूप हो रही है अतः वह भी गंगा के तुल्य है—यही गंगा से मिली हुई गंगा के समान है। अन्तर केवल इतना ही है कि नदी चंचल होती है और ये (आपके श्री अंग और भूषण) एकरस रहते हैं। इसीसे स्थिर कहा गया।

क्रामत् तामरस उल्लसत्
काम् अपि रसधुनीम्
(वयम् स्व हृदये)
अवेक्षामहे

विकसित कमलों से शोभित
किसी एक अद्भुत शृङ्गाररस नदी को
(हम सब चरण किंकर गण अपने हृदय में)
देखते हैं अर्थात् ध्यान दृष्टिसे हम सदा उनकी उपासना करते हैं। भाव-किंचित् चंचल जो पाद तलरूपी लालकमलों से शोभित हैं और शृङ्गाररसरूपी जल से परिपूर्ण हैं ऐसी श्रीजनकतनयारूपिणी नदी को हम सब आश्रितजन अन्तर्दृष्टि से देखते हैं।

श्रीसिया जू को भी कमल के ऊपर कमल रखने से सिन्धुतनया लक्ष्मी ही समझ लेते हैं।

र० प्र०–मुख कंज में द्वै दृग कंज खिले
कमला कमलोपरि त्यों भ्रम होवै।
हँसली जनु हंस औ मोतिनमाल
मनो युग गंग तरंग सँजोवै॥
विकसे बहु कंजन शोभित हैं
रसराज भरी जल आनँद मोवै।
श्रीमिथिलेश कुमारी नदी महँ
रामकुमार सदा श्रम धोवै॥

इस श्लोक में श्रीमिथिलेश राजनंदिनी जू का वर्णन शृंगार रूपिणी नदी के रूपक से किया गया है। 'कमलोपरिस्थकमलम्' में तो भ्रमअलंकार स्पष्ट ही है। "गंगा संगत गंगया" में तद्गुण अलंकार का बड़ा सुन्दर निदर्शन कराया गया है॥ ५॥

अंकोन्मुक्त मृगाङ्क मण्डलगलत्पीयूष पानव्रतं,
हित्वा यस्यरसं रसज्ञ तिलका स्वैरं धिया गृह्णते।
कौशल्या सुकृतेच्छुपाकसचिवः सर्वं सहा स्वर्गवी,
पुण्य क्षीर विपाक एष भजते जीवस्य जीवातुताम्॥ ६॥

"रसो वै स.' 'रसं ह्येवायं लब्धाऽऽनंदी भवति।"
श्रुत्यनुसार रस ब्रह्म का पर्याय है अतः रसज्ञ का अर्थ ब्रह्मानंद-ज्ञाता

रसज्ञ तिलकाः — ब्रह्मानन्द रस के जानने वालों में श्रेष्ठ अर्थात् परम हंस लोग

अङ्क-उन्मुक्त — चिन्ह (कलङ्क) से रहित अर्थात् निष्कलंक
मृगाङ्क मण्डल गलत् — चन्द्रमण्डल से प्रवाहित
पीयूष पान व्रतम् हित्वा — अमृत पीने के लिये काम्य नियमों को त्याग कर

[भाव यह कि अमृत पान काम्य कर्म साधन का

फल है उसे अर्थात् काम्य कर्मों को छोड़ कर—
निष्काम होकर उस ब्रह्म रस को ग्रहण करते हैं]

यस्य स्वैरं धिया गृह्णते — जिसके रसको अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से ग्रहण करते हैं [तात्पर्य यह कि कहकर पार नहीं पा सकते केवल निरन्तर रसास्वादन पूर्वक ध्यान करते रहते हैं ।

कौशल्या सुकृत इक्षु पाक सचिवः — माता श्री कौशल्याजी के पुण्यरूपी ईख का पाक अर्थात् शक्कर या मिश्रीरूपी श्रीराम जी हैं उन श्रीराम जू से मिला हुआ (सचिव का अर्थ सहायक वा सहकारी है ।]

सर्वंसहा + स्वः + गवी पुण्यक्षीर एष विपाकः जीवस्य जीवातुताम् भजते । — पृथ्वी रूपी स्वर्ग की गाय अर्थात् कामधेनु के पुण्यरूपी पवित्र दुग्ध का यह श्रीसीतारूपी विशिष्ट पाक अर्थात् रबड़ी मलाई आदि है वह जीवों को जिलाने का व्रत धारण किये है अर्थात् जिलानेवाला परमौषधिरूपता को प्राप्त होता है ।

र० प्र०—राममयङ्क कलङ्क बिना तिनते रसस्रोत सुधा वरसै ।
तेहि पीवनको तजि लौकिक वैदिक काम्य 'कुमार' हियो सरसै ॥
कौशिला इक्षु सिता रघुनन्दन भूदिविगो रस सीयलसै ।
पाक सिता रबड़ी करि सेवत संसृत व्याधि असाधि नसै ॥

तात्पर्यार्थ—श्रीकौशल्याजी के सुकृतरूपी मिश्री से मिला हुआ और पृथ्वीरूपा कामधेनु के पवित्र क्षीरपाक ने जीवों को जिलाने का व्रत धारण किया है, भाव यह कि जैसे मिश्री मिश्रित दिव्य रसमय पवित्र क्षीरपाक जीवों के सब रोगों को नाश कर जीवन दान देता है वैसे श्रीकौशल्याजी के सुकृत से प्रगट हुये श्रीरामजी मिश्रीरूप हैं, उनसे मिलकर पृथ्वीरूपा कामधेनु से प्रगट हुई श्रीसिया जू रूपी यह क्षीरपाक जीवों के अनादि अविद्या जनित क्लेशों को नाशकर जीवों को अमर

बनाता है। इस श्लोक में श्रीसीताजी को अपनी जीवन औषधिरूपा वर्णन किया गया है ॥ ६ ॥

यस्मिञ्छैलसुताऽलिकेन्दु कलिका कल्याण मालाल्यते,
बाग्देवी कबरी विभूषण मणिग्रामः फलस्तोमति।
नासा मौक्तिक रश्मयः स्मरसरोजाक्ष्यास्तुषारन्त्यहो,
मैथिल्याचरणांशुपल्लव चयः शय्यास्तु मच्चेतसः ॥७॥

यस्मिन्	जिन श्रीजानकीजी के
[चरणांशु पल्लवे–	श्रीचरणों के किरण रूपी पल्लव में
प्रणमन्त्याः)	प्रणाम करती हुई
शैल सुता–	गिरिराज हिमालय की कन्या पार्वतीजी के
अलिक	शिर के केशों के ऊपर जो प्रकाशमान्
इन्दु कला–	चन्द्रिका में लगी अनेकों चन्द्रकलायें हैं वही
कल्याण–	कल्याण देनेवाली मंगलमय
माल्यायते	पुष्प समूह के समान हो जाती हैं।
(तद्वदाचरति)	अर्थात् जब पार्वतीजी श्रीसिया जू के चरणों में प्रणाम करती हैं तो पार्वतीजी के ललाट के चन्द्रिका की चन्द्रलेखा श्रीसिया जू के चरणों में छू जाती है वह मानो चन्द्रलेखा (चन्द्रिका) नहीं है अपितु पुष्पों का समूह है।
(यश्मिंश्चरणांशुपल्लवे–	जिन श्रीजानकीजी के चरणों के किरणरूपी
प्रणमन्त्याः)	पल्लवों में प्रणाम करती हुई
वाग्देवी कबरी	सरस्वतीजी के चोटी जूड़ा-चूड़ा या वेणी में गुँथे
विभूषण मणि	हुये गहनों में जो मोतियों के
ग्रामः–फल	समूह हैं वही फलों के
स्तोमति (समुदायवदाचरति)	समूह के समान हैं।

(तथा च यस्मिंश्चरणांशु पल्लवे प्रणमन्त्याः)
स्मर सरोजाक्ष्याः
नासा मौक्तिक
तुषारन्ति (इति) अहो
मैथिल्याः
चरण-अंशु-पल्लवचयः
मत् चेतसः
शय्या अस्तु ।

और जिन श्रीजानकीजी के श्रीचरणों के किरण रूपी पल्लवों में प्रणाम करती हुई—
कामदेव की (पत्नी) कमलनयनी रति के
नासिका के मोती
ओस के समान शोभित हैं। ऐसा आश्चर्य रूप
श्रीमिथिलेशराज नन्दिनी जू के
श्रीचरणों के किरण रूपी दलों के समूह
मेरे चित्त के (विश्रमार्थ सदा)
शयन स्थान होवे, अर्थात् मेरा चित्त निरन्तर
आपके श्रीचरणों का ही चिन्तवन करता रहे।

र०प्र०—वाणी, सती, रति, सिन्धु सुता मित सीय पदांगुलि पै शिर टेकैं।
कबरी मणि, चन्द्रिका, नासामणी, फल, फूल, दलोसके बुन्द के लेखैं।
मानो परे दल शय्या सिया पद सेवत लालत टारि निमेखैं।
शशि भानु प्रभा लखि लाजित ज्योति 'कुमार' सियापद ध्यान में देखैं॥

इस श्लोक में रूपक द्वारा श्रीचरणों में स्वचित्तस्थिति की प्रार्थना की गई है॥७॥

मन्दाकिन्यवगाहनाऽमलसुरीबन्दारुमौलिस्खलन्,
मंदारादिमधूनियस्यपदयोरिच्छन्तिमन्दानिलम्।
विन्दानीतिसवक्तियंप्रतिरसाद्यातारविन्दासनः,
किं दास्येन लभेऽरविन्दनिलयापादारबिन्दासवम्॥ ८॥

मन्दाकिनी अवगाहन
अमल सुरी
वन्दारु
मौलिस्खलन्
मन्दार आदि
मधूनि यस्य पदयोः
मन्द अनिलम्

आकाश गंगा में स्नान करने से
निर्मल हुई देवांगनायें जब
प्रणाम करने आती हैं तब उनके प्रणाम करते
समय मस्तक से गिरते हुये
कल्पवृक्ष-पारिजात इत्यादि के पुष्पों के
मकरन्द जिनके चरणों की
धीमे धीमे पवन की सदैव

इच्छन्ति ।	लालसा करते हैं। तात्पर्य यह कि देवांगनायें भी स्वयं को अधिकारी न समझकर दूर से ही प्रणाम करतीं हैं। जिससे श्रीजी के चरणों की सुगन्ध की चाह देव स्त्रियाँ और मंदारादि भी किया करते हैं।
तथा सः	और वे-सर्व प्रसिद्ध
अरविन्दासन धाता	कमलासन ब्रह्माजी भी
यम् प्रति	जिस चरण कमल के मकरन्द के विषय में
इति वक्ति	ऐसा कहते हैं कि
(अहम् एतत् कथं)	मैं इस रसको कैसे
विन्दानि	प्राप्त कर सकूंगा (और ग्रन्थकार भी।
रसात्	उसरस से आकृष्ट होकर विचारते हैं कि मैं उन
अरबिन्दनिलयाः	कमल में निवास करनेवाली श्री सीताजी के
पाद अरबिन्द	चरण कमल की।
आसवम्	मद्यवत् मनोमुग्धकारी सुगन्धि को
किं दास्येन लभे ।	किस दासता (कैंकर्य-सेवा) से प्राप्त करूँ ।

र० प्र०–देव तिया सुर पादप पुष्प लै मज्जि मँदाकिनि पूजन धावैं।
पाइ सिया पद पंकज सौरभ मोदित सौरभ चाह बढ़ावैं॥
कमला, कमलासन आसनमारि कै जापद को नित ध्यान लगावैं।
रामकुमार कृपाकै ढरैं तब सोपद सीय हृदैमम आवैं॥

इस श्लोक में श्री सियाजू के चरणकमल के मकरन्द का वर्णन करते हुये बताया गया है कि जो वस्तु देवांगनाओं तथा जगत्स्रष्टा ब्रह्मा को भी दुर्लभ तम है वह रस भला हमें किसी साधन से कैसे प्राप्त हो सकता है ? तात्पर्य इसकी प्राप्ति क्रियासाध्य नहीं है अपितु कृपासाध्य है और वह कृपा दासता (कैंकर्य) से ही प्राप्त हो सकती है, दास्यभावातिरिक्त अन्य उपाय से कदापि नहीं। क्योंकि—"मोरें अधिक दास पर प्रीती। "सेवक सेव्य भाव विनु भवन तरिय उरगारि।" ॥ ८ ॥

नमद्वाणीन्द्राणी प्रमुख सुमुखीनां शिरसि यं,
सुपूरं सिन्दूरं कतिचन विदूरंग रसिकाः ।
अवन्या नन्दिन्यास्त्रिभुवनजनन्याश्चरणयोः,
परागो मे रागोदयकृत परागो विधुनुताम् ॥९॥

कतिचन रंग रसिकाः	कोई कोई (विरले ही) भक्ति संज्ञक प्रेमरस के जानने वाले रसिक अर्थात् जिन्हें भक्तिरस का आनंद मिल चुका है वे विद्वान् भावुक लोग
नमत् वाणी इन्द्राणी	प्रणाम करती हुई सरस्वती एवं शची
प्रमुख	प्रमुख (इत्यादि) उत्तमोत्तम मुख्य मुख्य
सुमुखीनाम् शिरसि	देव सुन्दरियों के शिरों में
यम्	जिस श्री सियाजू के चरण रज को
सुपूरम् सिन्दूरम्	अच्छी प्रकार धारण किया गया मांग का सिन्दूर है
(इति) विदुः	ऐसा समझते हैं । अर्थात् शारदा शची आदि जब श्री जानकीजी के चरणों में प्रणाम करती हैं तब उनकी मांगें श्रीसीताजी के पद परागरूपी सिंदूर से भर जाती हैं, जिससे शारदादि का सुहाग बना रहता है । भाव यह कि सरस्वती आदि का सौभाग्य श्रीसीय पदरज के आधीन है । इस प्रकार की महिमा शालिनी
(एवंभूता) त्रिभुवन जनन्याः	तीनों लोक की माता अतः मेरी भी माता (क्योंकि मैं भी त्रिलोकी के ही बीच में हूँ)
श्री अवन्याः नन्दिन्याः चरणयोः परागः	श्री भूमितनया श्री सियाजू के चरण कमलों की धूली-रजः कण
मे राग उदय कृत परागः	मेरे विषयों की अभिलाषा और आशा से उत्पन्न हुये धूलि-कलुष-मल-परमअपराध को नाश
विधुनुताम् ।	करैं । भाव यह कि माता श्रीजानकीजी हम पर

ऐसी कृपा करैं कि हमारी समस्त विषयों की अभिलाषा का नाश हो जावे। क्योंकि यह आप ही के अधीन है।

१० प्र०—जानैं कोऊ बिरले रस लम्पट बानी शची शिर माँग सिंदूरैं।
लैके सिया पदकंजन की रज माँग सोहाग भरैं भरि पूरैं।
तीनिहुँ लोकन मातु, मही तनया पद पंकज की सुचि धूरैं।
पावैं कबौं जो 'कुमार' जू नेसुक नेसुक में भवबंधन तूरैं॥

रुचिं तावच्चिन्तामणिसदसि चिन्ताऽध्वनि गता,
धुनीते ध्येया या मुनिभिरभिध्येया श्रुति शतैः।
मया साऽनायासा परिणत धिया साधुगदितुं,
न शक्या जानक्या श्चरण नखमाणिक्य सुखमा॥१०॥

या श्री जानक्याः	जो श्रीजानकी जू के
चरण नख माणिक्य सुखमा	चरण की अँगुलियों के नख की माणिक्यवत् परमा शोभा है।
(सा) चिन्ता अध्वनि गता सती	वह चिंतवन (आलोचना) मार्ग में प्राप्त होते ही अर्थात् चिंतवन मात्र से ही
चिन्तामणि	सर्व काम प्रद दिव्य मणि चिन्तामणियों की
सदसि	सभा में जाकर सभा की
रुचिम्	अभिलाषा को अर्थात् शक्तिमान दानियों से जाकर वर माँगने की चाह इच्छा को
तावत्	तबतक अर्थात् पहले ही अथवा तुरन्त ही
धुनीते	हटा देती हैं अर्थात् चिन्तामणियों से वैराग्य प्राप्त करा देती है भाव यह कि श्री सिया जू के नख माणिक्य की सुषमा के चिंतवन करनेवाले चिन्तामणि की चाह कभी नहीं करते।
या च मुनिभिः	और जो मुनियों करके सदा

ध्येया	ध्येय है अर्थात् मुनिगण सदैव जिसका ध्यान करते हैं।
श्रुतिशतैश्च अभिध्येया	और श्रुतियों के समूह (वेद मंत्रों-उपनिषदों) से प्रतिपादित अर्थात् सर्वोत्तम रूप से वर्णन की गई है उस सुषमा-परमाशोभा को
अनायासा परिणत धिया	बिना परिश्रम अर्थात् स्वाभाविक ही (मायिक विकारों में) लिप्त बुद्धिवाले
मया साधु गदितुं न शक्यम्।	मुझसे यथार्थ रूप से ठीक ठीक कहा नहीं जा सकता।

र० प्र०—सीय पदांगुलि जे नख राजित, जे नखरा जित माणिक चोरैं।
चिन्तत ही मन चिन्तमणीन सुवैभव आनि सजावत धोरैं॥
मांगन चाह मिटाइ महानिर्वानहुँ से जन को मन मोरैं।
श्रुतिशास्त्रअनन्त अनन्त प्रभाव बताव कुमार कुमारग छोरैं॥
इस श्लोक में श्रीसीताजी के चरण नखों के ध्यान का माहात्म्य कहा गया है॥१०

स्वभालेबालेन्दुं यदकलयदेकस्त्रिनयन—
स्तदन्येषां तेषामपि तदभिलाषः प्रववृधे।
तदानीं जानीमो जनकतनया पन्नख शिखा—
स्तदालीभिर्लूनाः किल तिलकयन्तिस्म निटिले॥११॥

यत् (यस्मात्)	जिस जगत्पूज्यता के कारण
एकः त्रिनयनः	एकमात्र (महारुद्र) शंकरजी
स्वभाले	अपने ललाट में
बाल + इन्दुम्	शुक्ल पक्ष की द्वितीया के चन्द्रमा को
अकलयत्	धारण किये हैं।
तत् (तस्मात्-दृष्ट्वावा)	इसीसे अथवा यह देखकर
अन्येषाम्	और जो दशरुद्र हैं—
तेषाम् अपि	उनके मनमें भी

तत्	वही मस्तक पर अर्धचन्द्र धारण करने की
अभिलाषः प्रवबृधे	लालसा बढ़ी। (तब मनकी इच्छा पूर्ण करने लियें संयोग से जिस दिन उनकी लालसा बढ़ी।)
तदानीम् (यत्) आलीभिः	उसी समय जो श्रीकिशोरी जू की सखियों ने
जनक तनयाः	श्रीजनकनन्दिनी जू के
पद नख शिखा	चरण के नखके अग्रभागों को
लूनाः	काटकर गिराया था
ताम्	उन काटे हुये दशों नखों को
ते सर्वे	वे सब महारुद्रकी समता चाहनेवाले दशो रुद्रगण
निटिले	अपने अपने ललाट पर अर्धचन्द्रात्मक
तिलकयन्ति स्म	तिलक रूपसे धारण करते हैं यह हम
किल जानीमः।	निश्चय करके जानते हैं।

र० प्र०—रुद्र एकादश एकशशी शिर धइ समता किमिकै सब पावैं।
सीय पदैं नख काटि दसौ सरजू जब जाइ सखीन बहावैं॥
धाइ तबै दस रुद्र धरैं शिर कान्ति महाशशि अर्ध सुहावैं।
यहि हेतु 'कुमार' महा शिवजू द्वितिया शशिको नित शीश सजावैं॥

इस श्लोक में बताया गया है कि श्रीसीताजी के कटे हुये चरण नखों को अपने ललाट पर चन्द्रवत् धारण करने से दस रुद्रगण महारुद्र की समता को अर्थात् शिवत्व को प्राप्त हुए हैं॥११॥

बिराजन्ते चिन्तामणि सदसि लक्ष्मी पद नख—
प्रतिच्छायाः छाया पतय इव दशेन्दु सहिताः।
प्रजल्पेदत्पङ्गस्तव कवि रिमामस्मदुपमां,
तदा मन्तु क्षन्तुं समुचित इति क्षोणि लुठिताः॥१२॥

लक्ष्मीः	श्रीरामजी की गृह लक्ष्मी श्रीसीताजी के
पद नख	चरण नख की

प्रतिच्छाया	कटे पड़े हुये नख के अग्रभाग (नख की किंचित् भी बृद्धि सखियां देख नहीं सकतीं अतएव)
दर्श इन्दु सहिताः	अमावस्या के चन्द्रमा के सहित
छाया पतयः इव	सूर्य के समान
चिन्तामणि	सर्व कामप्रद दिव्यमणि-चिन्तामणियों की
सदसि विराजन्ते ।	समाज में शोभा देते हैं ।
इति (कश्चित्) अल्पज्ञः कविः	ऐसा कोई मूर्ख कवि यदि
तव इमाम् अस्मत्	आपकी यह (इस) हमारी (कही)
उपमां प्रजल्पेत् तदा	उपमा को प्रजल्पन (कथन) करे तो
मन्तुम्	(हमारे खंडन के इस) अपराध को
क्षन्तुम् सम् उचितः	क्षमा करना सर्वथा उचित है ।
इतिहेतोः	इसीलिये (अपराध क्षमा कराने के लिये)
ते (सर्वे)	वे सब (अल्पज्ञ कवि लोग)
क्षोणि	पृथ्वी पर (चरण नख के सामने पड़े)
लुठिताः ।	लोट रहे हैं अर्थात् उन कटे हुये नखों की प्रार्थना कर रहे हैं ।

र० प्र० रामप्रिया पद अंगुलि के नख काटे अमावस के शीश सों वै ।
भानु प्रभासु प्रभावित होत महामणि देव सभानि विगोवै ॥
को कविमूढ़ करै तुलना जिनकी तुलना कछु वस्तु न होवै ।
यों गुनि कै अपराध 'कुमार' सबै कवि लोटत भूमि भिगोवै ॥

इस श्लोक में व्यङ्गाक्षेपालंकार द्वारा कटे हुये नखों का प्रभावोत्कर्ष वर्णन किया गया है ॥ १२ ॥

सकारुण्याऽरुण्या नख मणय एते चरणयो—
र्हरन्तोऽपि ध्वान्तं नख मणय इत्थं व्यवसिताः ।
पुरस्तादेतेषामनिमिषदृगम्भोज परिषन्
निमेषादुन्मेषं कथमितरथा मुञ्चति रमे ॥१३॥

हे रमे ! सकारुण्याः	* हे सीते ! करुणायुक्त—
अरुण्याः	अरुणिमा-ललाई है जिनमें अर्थात् क्रोधरूपी ललाई नहीं है तात्पर्य यह कि अरुणता क्रोध का चिह्न है और करुणा का रूप श्वेत है अतएव यह श्वेतता युक्त अरुणिमा अद्भुत करुणा का सूचक है कि "निर्वाण दायक क्रोध जाकर०" जब आपका क्रोध भी ब्रह्मानन्द प्रद है तो करुणा का तो कहना ही क्या 'रीझेवशहोत' आपके ऐसे
चरणयोः एते	चरणों की ये सब इतनी
नखमणयः	नखमणियां—मणिवत् प्रकाशित नख समूह
ध्वान्तं हरन्तः अपि	अन्धकारको हरते-नाश करते हुये भी
ख मणयः	आकाश की मणियाँ-चन्द्रमा सूर्यादि
न (सन्ति)	नहीं हैं अर्थात् आपके पद नख सूर्य चन्द्र से विलक्षण हैं।
इत्थं व्यवसिताः ।	ऐसा निश्चय है।
यतः ऐतेषाम्	इसी कारण इन नखों के
पुरस्तात्	सामने होने से
अनिमिष् दृग्	देवताओं (पलकें न गिरने से देवगण अनिमिष कहे जाते हैं) के नेत्र
अम्भोज परिषन्	कमल खुलते हैं भाव यह कि ये नख यदि सूर्य

---

* वामांके जानकी देवी किशोरी कनकोज्वला।
कैवल्यरूपिणी नित्या चिदानंदैक विग्रहा॥
सेयं सीता भगवती ज्ञानानन्दस्वरूपिणी।
योगिनां रमणे रामे रमते राम बल्लभा॥ ८३॥

बृहद्ब्रह्मसंहिता पाद ३ अध्याय १

चन्द्र होते तो देवताओं के नेत्र कमल एकरस खुले न रहते क्योंकि सूर्य चन्द्र उदयास्त शाली हैं।

इतरथा	यदि ऐसा न होता तो (नेत्रों का)
निमेषात् उन्मेषम्	पलकों से खुलना (विकास—खोलना)
कथम् मुञ्चति	कैसे छोड़ते।

र० प्र०—हे हे सिया तव पाँयन में यह क्रोध नहीं; करुणा की ललाई।
शशि सूर नहीं मणि भूरि नहीं तमनाशत है नख की द्युतिताई।
याते जबै नख दर्श करैं सुर नेकहु ना पलकैं झपकाई।
बहिरन्तर नित्य प्रकाशि हरैं तम जन्म कुमार करै सफलाई।

इस श्लोक में श्रीजी के पद नखों को चन्द्र और सूर्य दोनों से विलक्षण इस तरह कहा है कि यदि चन्द्रमा होते तो देवताओं के नेत्र कमल विकसित न होते और यदि सूर्य होते तो सततकाल एकरस खुले न रहते क्योंकि सूर्य के सामने सबके नेत्र बन्द हो जाते हैं अर्थात् कोई भी सततकाल एक रस सूर्य की ओर देख नहीं सकता और इन नखों की ओर देवगण एकरस दृष्टि लगा कर देखते हैं। विलक्षणता यह है कि इनका प्रकाश सूर्य चन्द्र से अधिक एवं सौम्य हैं अर्थात् ये अन्तर्बाह्य के सम्पूर्ण अन्धकार को दूर कर देते हैं परन्तु सूर्य चन्द्र तो केवल बाहर के ही अन्धकार को दूर कर सकते हैं और ये नख निर्मल है परन्तु सूर्य चन्द्र में तो कालिमा है। चन्द्रमा की कालिमा (लांछन) तो स्पष्ट ही है *सूर्य में भी काले काले धब्बों का होना वैज्ञानिकों ने ज्ञान किया है। श्रुति ने बतलाया हैं कि सूर्य में कृष्ण वर्ण की प्रभा है। यथा

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयतद्वा
एतद् यदेतदादित्यस्य परं कृष्णं रूपम्॥
(छान्दोग्योपनिषत् ३। ३। ३)

---

* दिवाकरे येऽसित विन्दवः स्थिताः वदन्तुताँस्तत्वविदो यथातथा।
वयं तु जानीम इतीव बल्लभ! त्वदीव तेजो दहनांकनं ध्रुवम्॥
(प्रपञ्च कल्पद्रुम)

इत्यादि कारणों से श्रीपद नखों को सूर्य चन्द्र से विलक्षण कहा गया है ॥१३॥

चकोराणां प्राणान् यदवति नवेन्दुच्छविमतिं,
वितन्वत्कोकानामपि निशि नवीनातपधियम् ।
मिलिन्दानां हेमाम्बुज घनरजः प्रेमपदयोः,
नखानामारुण्यं तव जननि केषां न शरणम् ॥१४॥

हे जननि !	हेमातः
तव पदयोः नखानाम्	आपको श्रीचरणों के नखों की
आरुण्यम् केषां शरण्यं न	ललाई किसका रक्षक नहीं है ? अर्थात् सबका अवलंब है
यत् (यस्मात्)	जिससे कि (अर्थात्) वह नखों की अरुणिमा
नव इन्दु छवि मतिम्	नवीन चन्द्रमा की शोभन बुद्धि को
वितन्वत् (विस्तारयत् सत्)	बिस्तार करते हुये-चन्द्रकिरण के प्यासे-
चकोराणां प्राणान् अवति	चकोरों के प्राणों की रक्षा करती है । तात्पर्य कि नखों को देखकर चकोरों को चन्द्रमा का भ्रम होता है इससे वे अपने प्राणोंकी रक्षा करते हैं ।
निशि नवीन आतपधियम्	रात्रि में सूर्य के नवीन घाम-धूप की बुद्धि का
वितन्वत्	विस्तार करते हुये वह (रात्रि में वियुक्त रहने वाले)
कोकानाम्	चकई चकवाओं को (रात्रि में)
अपि	भी (सूर्य के समान प्रकाश दिखलाकर उनके)
प्राणान् अवति (तथा)	प्राणों की रक्षा करती हैं । और
हेम अम्बुज घनरजः	सुवर्ण के कमलों का सघन (गाढ़) पीत परागका
प्रेम वितन्वत्	निश्चय कराकर प्रेम को उत्पन्न करते हुये
मिलिन्दानाम्	पराग मकरंद के लोभी भूखे भ्रमरों के (पान करने के लिये दौड़ने पर उनके)
प्राणान् अवति ।	प्राणों की रक्षा करती हैं ।

र० प्र०—मातु तुहीं अब देहु बताय न काको हरैं दुख ये नख लाली।
काको न रक्षत ह्वै अवलम्ब चकोर समूह दिवा शशि पाली॥
राति महा रवि के समह्वै चकई चकवै करि देत निहाली।
भौंर कुमारन देइ परागन प्राण रखैं सबकी प्रभुआली॥

इस श्लोक में यह बताया गया है कि सब की इच्छित वस्तु श्रीचरण नखों की लालिमा द्वारा ही प्राप्त हो जाती है इसी से सब कोई अपना अपना जीवन उन्हीं के आधीन समझ कर एवं उन श्रीपद नखों को देख कर प्रसन्न होते हैं॥१४॥

उदञ्चन् मंदारस्खलित कुरु विन्दाङ्कित मुखै—
रपूर्व स्वर्वापी कनकनलिनापीड़ित दलैः।
सबर्णा सौवर्णाम्बुज हृदि निषण्णां कथममी,
वयं बिम्बः पद्मानुपम पद्माङ्गुलि ततिम्॥१५॥

अपूर्व स्वः वापी	अद्भुत स्वर्ग की नदी श्रीगंगाजी से प्रगटे हुए
कनक नलिन	सुवर्ण के पीत कमलों के पत्ते
आपीड़ित दलैः	जिनके दल कुछ नीचे की ओर दबे हुये हों अथवा दलों का अग्रभागकिंचित् विदीर्ण होवै अर्थात् एकदम प्रस्फुटित न हों किन्तु किंचित् मात्र
उदञ्चत् मन्दार स्खलित	विकसित, देव वृक्ष से गिरे हुये
* कुरुविन्द अङ्कित	पद्मराग और लाल मणियों से चिह्नित उनके
मुखैः	मुख अर्थात् ऊर्ध्वभाग होवैं तथा उनके

---

* पद्मराग समुद्भूतं त्रिधा भेदैक जातयः।
सुगन्धिः कुरुविन्दश्च पद्मरागमनुत्तमम्॥
(अगस्तिमत मुक्ता परीक्षा प्रकरण ५)

शशाऽसृक् लोध्र सिंदूर मुंजा बन्धूक किंशुकैः।
पीतरक्तं सुपीतं च कुरुविन्दमुदा हृतम्॥
(अगस्तिमत मुक्ता परीक्षा प्रकरण ३६)

सवर्णाम् सौवर्ण-अम्बुज हृदि निषण्णाम्	समान मणि और सुवर्ण के कमल हृदय (मध्य-कर्णिका) में बिठाये या जड़े हुए हों अर्थात् यदि कल्प वृक्ष से गिरे हुये किंचित् विदीर्ण मुख (मुकुलित) स्वर्ण कमल के दल हों तो किसी तरह संकोच पूर्वक इन अंगुलियों की उपमा दी जा सकती है। ऐसे
अनुपम पद पद्म अंगुलिततम्	उपमारहित-अद्भुत चरण कमल की अंगुलियों की पंक्ति के महत्व को लौकिक मात्र बुद्धिवाले
वयम् कथम् विद्मः।	हम सब कैसे-किसकी सदृशता से या किस प्रकार से जान सकेंगे अर्थात् किसी तरह नहीं जान सकते क्योंकि—कर्णिका के ऊपर दल नहीं होता वह भी मणि जटित। भाव यह कि पद कमल कर्णिका है और भूषण भूषित अंगुलियां रत्न जटित दल हैं जो पद रूपी कर्णिका के ऊपर हैं।

र० प्र०—देव नदी के बिचित्र सुपंकज-स्वर्ण-पराग सुगन्ध भरे हैं।
नाल अधोमुख दाबित से दल कल्पतरू के विचित्र फरे हैं॥
भूरि जड़े मणिमाणिक से उपमा न कुमार जू सूझि परे हैं।
है यह कंज विना उपमा रत्नांगुलि मंजुलकोश जरे हैं॥

इस श्लोक में श्रीसियाजू के पद की अंगुलियों का वर्णन 'अभूतोपमा' द्वारा किया गया॥ १५॥

मृणालश्रेणीयं म्रदिम महिमा लोचनपथे,
शिला शीला लीला नलिन मलिनःकण्टक समम्।
नवोन्नीतं पंकी भवति नवनीतं तदतुलं,
परामर्शादर्शे प्रतिफलतु सीतापदतलम्॥१६॥

म्रदिम	श्रीसीताजी के चरणों की मृदुता-कोमलता की
महिमा आलोचन	महिमा (माहात्म्य) समालोचना (मीमांसा)
पथे	मार्ग में अर्थात् जब पदों की कोमलता पर विचार किया जाता है तब-उस समय
इयम् मृणाल श्रेणी	यह कमल की जटाओं (भँसेडों-पद्म कंदों) की जों पंक्तिया है वे
शिलाशीला	पत्थर के स्वभाव की अर्थात् शिला की तरह कठोर दीख पड़ती हैं और
लीला	लक्ष्मीजी का लीला (खेलनेवाला हाथ का)
नलिन मलिनः	कमल भी (भौंरों से घिरा होने से काला अतएव) मलीन और
कण्टक समम् ।	(भौंरों के दाढ़ी मूंछों से भरा हुआ अतएव) कंटीला जान पड़ता है ।
नवउन्नीतम् नवनीतम्	नवीन (तुरन्त का) निकाला हुआ मक्खन
पंकी भवति ।	कीचड़ के समान दीख पड़ता है ।
तत्—तस्मात्	इसी कारण से
परामर्श आदर्शे	विचार रूपी दर्पण में
सीता पद तलम्	श्रीसीताजी के चरणों के तलवे
अतुलम्	तुलना = उपमा रहित ही
प्रतिफलति (प्रतिबिंबितं भवति) ।	निश्चय होते हैं अर्थात् विचार रूपी दर्पण में अन्य उपमायें न आकर श्रीजी के चरण तल ही प्रतिबिंबित हो जाते हैं ।

र० प्र०—जाकी लखे मृदुता सु मृणालहु लागे कठोर सिला सम भारी ।
लागै कँटीलो रमाकर पंकज घेरे शिलीमुख दूषण धारी ॥
कींच समान लगै नवनी न बनी उपमा मति काँच निहारी ।
श्रीसिय को पदतालु अनूप न उप्पम आन कुमार विचारी ॥

इस श्लोक में बड़ी मीमांसा के साथ श्रीसीताजी के चरण के तलवे की कोमलता को उपमा रहित वर्णन किया गया है ॥ १६ ॥

नखश्रेणीमेणीदृश उपनिषद्विश्रुत जुष—
स्तव क्षोणी श्रेणीकरण कुशलामप्यविकलाः ।
यदेता लाक्षाभिः स्मरजननि साक्षात्पिदधते,
तदुत्प्रेक्षा लक्षी कृत नयन दोषापहृतये ॥१७॥

हे स्मरजननि !	श्रीरामभद्र जू के हृदय में अपने सौंदर्य से काम-उत्पन्न करनेवाली हे श्रीसीताजी !
उपनिषद्	वेद के सिद्धांत रूप शिरोभाग ब्रह्मविद्या रूप से प्रसिद्ध उपनिषद् ग्रंथो में
विश्रुति जुष;	प्रसिद्धि के लिये सेवन करनेवाले
अविकलाः एताः	अत्यन्त सावधान ये सब
एणीदृशः (सखिसमूहाः)	मृगनैनी आपकी सखियाँ,
क्षोणी श्रेणीकरण अपि	पृथ्वी को लाल रंग की बना देने में भी
कुशलाम् तवनख श्रेणीम् यत्	प्रवीण आपके नख पंक्ति को जो
लाक्षाभिः साक्षात् पिदधते	महावर से स्पष्ट रूपेण-सर्वथा ढँक देती हैं।
तत्	वह इसलिये कि जो कवि लोग
उत्प्रेक्षा	उपमा देने के लिये आपके चरण नख को
लक्षी कृत	लक्ष्य करनेवाले हैं उनके
नयन दोष	दृष्टि का दोष (अर्थात् नज़र न लग जावे इसे)
अपहृतये (भवति) ।	बचाने के लिये महावरि लगाती हैं कुछ शोभा बढ़ाने के लिये नहीं।

र० प्र०—कामजनी ! श्रुतिसेवित ! एनी दृगीनि रची नख की रुचिलाली ।
यावक युक्त रची पद अंगुलि ढांकि रखी पद की शुचिलाली ॥
जो लखिकै नर मूढ़कविन्द न देवैं जुठीं उपमा नर लाली ।
यों मनमाहिं कुमार लखै न लगै कछु दीठि रची इमि लाली ॥

इस श्लोक में श्रीसिया जू के पगमें लगे हुए महावर (यावक) का वर्णन करते हुये सखियों द्वारा महावर लगाने का कारण यह बताया गया है कि अत्यन्त शोभाशालिनी श्रीचरण नख पंक्तिको दुर्दृष्टि (बुरी नजरवाले) लोग न देखने पावै ॥ ७ ॥

नमृद्वी माणिक्यावलिरपि सरोजं न विरज-
श्चिरं के कंकल्लेस्तरुण रुचयः पल्लवचयः ।
किमुस्यादेतस्याश्चरण सदृशं पद्मबसते-
रितिप्रेक्षेयावत्तदनु फलनं तावदमृशम्॥१८॥

पद्म बसतेः	कमल वासिनी श्रीसीताजी के
चरण सदृशम्	(कोमल) चरण के समान
माणिक्य अवलिः	रत्नों की पंक्ति (रत्नों का समूह)
मृद्वी न (भवति)	कोमल नहीं हो सकती इसीलिये वह उपमानता के योग्य नहीं है । और
सरोजम् अपि चिरम्	कमल भी [कभी अनन्तकाल तक बहुत विचारने
(नोपमानत्वार्हं यतः)	पर भी] उपमानता के योग्य नहीं हो सकता
विरजम् न ।	क्योंकि कमल रज-धूल पराग रहित नहीं होता और चरण विरज हैं ।
कंकल्लेः तरुण रुचयः	अशोक वृक्ष के खूब लहलहाते हुये सुन्दर
पल्लवचयः के	पल्लवों के समूह क्या—किस गणना में हैं अर्थात् उनकी कौन कथा
किमु एतस्याः	क्या (अशोक पल्लव) इन श्रीसीताजी के
चरण सदृशम् (भवेत्)	चरण के समान हो सकता है ?
इति यावत् प्रेक्षेतावत्	ऐसा जब तक विचारते हैं तब तक
तत्	उन श्रीसीताजी के चरणों के समान
(इति) अनुफलनम्	ऐसा निश्चयात्मक

अमूशम् । विचार होता है अर्थात् श्री जू के चरण अनुपम हैं ।

र० प्र०–रत्न कठोर सियापद कोमल क्यों तिनकी उपमा कोउ देखैं ।
काल अनन्त लौं बानी विचारि फिरी तुलना रहितै पद लेखैं ।।
पंकज में रज ये रजहीन अशोक की पल्लव को किमि पेखैं ।
कोऊ कुमार न याकी धरैं छवि याते सदा निरुपम्मपरेखैं ।।१८।।

त्वमेव त्वन्मूर्तिं मृदुरभिविनिर्माय जनकैः
कलाकारैर्हीरैर्मुख जटित माणिक्य शकलैः ।
पदाङ्गुल्यावल्योर्नखदशकमस्याः सृजसिचेत्
तदोदन्वत्कन्ये तुलितमिवमन्येतव नखम्।।१९।।

(हे जननि ! यदि) त्वम् एव	हेमातः । यदि आपही
त्वत् मूर्तिम्	अपनी श्रीमूर्ति को
(मृदुभिः कलाकारैः)	कुशल कोमल शिल्पियों द्वारा
कलाकारैः जनकैः	कलामय आकार वाले अन्य रत्नोंके उत्पादक
मृदुभिः हीरैः	कोमल हीरों-मणियों से
माणिक्यशकलैः	माणिक्य – अरुणोपलपद्मराम के टुकड़े
मुख जटित	मुख पर जड़े हों इस तरह की मूर्ति को
अभि विनिर्माय अस्याः	अच्छी प्रकार बनाकर उस मूर्ति के
पद अङ्गुली अवल्योः	चरण की अंगुलियों की दोनों पंक्तियों के
नख दशकम् चेत् सृजसितत्	दशों नखों को यदि बनाइये तो
हे उदन्वत कन्ये !	समुद्र समगम्भीर श्रीजनकजी की कन्या ! हे श्री सीताजी !
तव नँखम्	आपके चरण नखों को (संकोच के साथ)
तुलितम् इव	उसमूर्ति के नख की समानता में कुछ कुछ मान
मन्ये ।	सकता हूँ । वास्तव में यह उपमा भी ठीक नहीं है, आपके पदनख तुल्य आपके ही पदनख हैं ।

र० प्र०—कोऊ चितेरो बड़ो जगको मणि माणिक आनि स्वरूप सँवारै।
तौ पद के नख की सुप्रभापर कोटि अखण्डल की मणिवारै॥
जो नख की समता न रहै कछु तो किमि अंग उपांगन धारै।
है न कहूँ कछु जो नखकी समतामहँ देन कुमार विचारै॥

इस श्लोक में दिखाया गया है कि जगज्जननी श्रीसीताजी के पद नख तक की उपमा ब्रह्माण्ड के किसी भी पदार्थ से किसी प्रकार से भी नहीं ही दी जा सकती "लही न कतहुँ हरिहिय मानी। इन सम ये उपमा उर आनी॥" ॥१६॥

चतुर्णां वर्णानां वरदमिदमेवस्मृतमहो,
चतुर्णां वेदानां विशदमिदमेवस्तुति पदम्।
चतुर्णामर्थानां प्रकटमिदमेवार्पकमिति,
ध्रुवं ब्रूते राकाविधुमुखि पताका तव पदे ॥२०॥

हे राका विधुमुखि !	हे पूर्णचन्दानने ! मातः।
तव पदे (या) पताका (सा)	आपके वामपद में जो पताका चिह्न है वह
इति ध्रुवम् ब्रूते	यह निश्चयरूप से कह रहा है कि
इदम् एव	यह श्रीजू का पद ही
चतुर्णाम् वर्णानाम्	ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों को
अहो (आश्चर्यरूपम्) वरदम्	विचित्र (अलौकिक) वरदान देने वाला है
(इति) स्मृतम्	ऐसा श्रुतिस्मृतियों में स्मरण किया—कहा गया है
(तथा) इदम् एव	और यह चरण ही
चतुर्णाम् वेदानाम्	ऋक्, यजुः, साम् और अथर्व इन चारों वेदों के
विशदम् स्तुति पदम्।	निर्मल स्तुति—स्थान हैं अर्थात् वेदों को स्तुति करने के लिये यही चरण ही सर्व गुण संपन्न दिखाई देते हैं।
(एवम्) इदम् एव	इस प्रकार यह चरणही
चतुर्णाम् अर्थानाम्	अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पदार्थों को

प्रकट अर्पकम्।	प्रत्यक्षरूप से (सद्यः अर्थात् इसी शरीर से) देने वाले हैं।

र० प्र०—चन्द्रमुखी तव पाद तले ध्वजरेख, सबै वर देन कहै श्रुति।
चारिहु वेदन को शुचि थान यहै सिय पाँव न आन अहै गति॥
चारि पदारथ देत तुरन्तहिं नेकहु प्रेम धरै सु करै नति।
रामकुमार कृपा लहि पावनि, भूलि परै नहिं फेरि कुसंसृति॥

भगवान् के चरणों में अनेक चिन्ह हैं अगस्त संहिता और महारामायण में अड़तालिस चिन्ह कहे गये हैं, भागवत में उन्नीस और भक्तमाल में बाईस चिन्ह बतलाये गये हैं। कुछ लोगों ने छत्तीस माना है—

अष्टादशहि चिन्हानि रामस्य दक्षिणे पदे।
जानक्या वाम पादे च ध्यायन्ति नारदादयः॥

पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज ने विनय-पत्रिका के त्रिसठवें पद्य में छ चिह्नों का वर्णन किया है परन्तु श्रीरामगीतावली और परम प्रसिद्ध ग्रंथ श्रीरामचरितमानस में चार चिह्न मात्र का ही वर्णन है। इस प्रस्तुत स्तोत्र में भी श्रीसीताजी के मात्र चार ही चरण चिह्नों का वर्णन है। इस न्यूनाधिक्य का कारण यह ज्ञात होता है कि चिह्न जितने कम होते हैं ध्यान में उतनी ही सुगमता रहती है। श्रीरामभद्र जू के दक्षिण चरण में जो चिह्न हैं वे ही श्री जू के वाम चरण में हैं और भगवान् के वाम चरण में जो चिह्न हैं वे ही श्री जू के दाहिने चरण में हैं। इस श्लोक में श्री जू के वाम चरण में पताका धारण करने का प्रयोजन वर्णन किया गया है॥ २०॥

उपासाभिः कश्चित् कलयतु बिलासाय तनिमा—
ऽऽदिमाः सिद्धीः सिद्धो भवतु मितबुद्धेरपि पुरः।
अनङ्के ऽसृण्यङ्कस्तव स पदपंकेरुह तले,
समाजः सिद्धीनां तव चरण एवेतिवदति॥ २१॥

हे अनङ्के!	हे निष्कलंके-सर्वपापशून्ये जननि!
कश्चित् (अज्ञः) विलासाय	कोई मूर्ख लोग प्राकृतिक सुख विलास के लिये

तनिमा आदिमा सिद्धीः	अणिमा आदि आठ या अठारह सिद्धियों को
उपासाभिः कलयतु	अनेक साधनों द्वारा प्राप्त करता है या प्राप्त करने की कल्पना करता है ।
अपि मित बुद्धेः पुरः	और अल्प बुद्धिवालों के सामने
सिद्धः भवतु स	सिद्ध बनता है वह (मूर्ख यह नहीं जानता कि)
तव पद पंकेरुह तले	आपके चरण कमल के तलुवे में स्थित
असृण अंकः इति वदति	अंकुश का चिन्ह यह कह रहा है कि
सिद्धीनाम् समाजः	अनन्त सिद्धियों का समाज अर्थात् विश्राम स्थान
तव चरणः एव ।	आपके श्रीचरण कमल ही हैं ।

र० प्र०—जे अति मूढ़ बिचार बिना तप मायिक सिद्धिहिं को बहु साजैं ।
जानत ना सिय के पद पंकज कोश महासिधि मुक्ति बिराजैं ॥
मत्त महागज जो जन को मन ता बश को पद अंकुश राजैं ।
रामकुमार द्रवैं जेहि पै तेहि के हिय सीय पदाम्बुज छाजैं ॥

इस श्लोक में वाम पद में स्थित अंकुश चिन्ह का वर्णन करते हुये यह बताया गया है कि जगजननी श्रीसीताजी के इन चरणों का आश्रय छोड़कर जो लोग अणिमा आदि सिद्धियों के लिये यत्न करते हैं वे अज्ञानी हैं ॥ २१ ॥

विलोक्य त्रैलोक्य स्थित ललितमाणिक्यमखिलं,
परिश्रान्तोमातर्मुनिशरणयोस्त्वच्चरणयोः ।
अपश्यं सादृश्यं क्वचिदपि न दृश्यं मम तदा,
तयोरेवान्योन्यं समजनि समत्वव्यवसितिः ॥२२॥

हे मातः ! त्रैलोक्यस्थित	हे माताजी तीनों लोकों में वर्तमान
अखिल ललितमाणिक्यम्	सम्पूर्ण सुन्दर रत्नों को (विचार की दृष्टि से)
विलोक्य (अहम्) परिश्रातं	देखकर (खोजकर) मैं थक गया हूँ । परन्तु
मुनि शरणयोः	मुनि के रक्षक (वा 'मुनिमन मधुपवसहिं जिन्ह माहीं') मुनियों के मन के निवास स्थान ! "शरणं गृह रक्षित्रो."

त्वत् चरणयोः दृश्यम्	आपके चरणों की किंचित् मात्र भी
सादृश्यम् क्वचित् अपि न	समानता कहीं भी मैंने नहीं
अपश्यम् तदा तयोः एव	देखा तब आपके दोनों चरण ही परस्पर में
अन्यः अन्यम् समत्व–	एक दूसरे की समता में हैं
व्यवसितिः (इति) मम	ऐसा निश्चय मेरे हृदय में
सम् अजनि ।	सम्यक् प्रकार से उत्पन्न हो गया है कि आपके वाम चरण के समान दाहिना और दाहिने के समान बायाँ चरण है ।

र० प्र०–ढूंढ़ि थक्यों तिहुँलोक सुरत्नानि पै न लख्यों कहुँ कोऊ रसाला ।
जौ मुनिनाथन के शरणैं सियके चरणैं तुलते कछु आला ॥
देखे समान सुदाहिन वाम पदै उपमामें भनै विधि बाला ।
धारि कुमार हिये महँ मातु मिटावत संसृति भूरि कसाला ॥

सर्वत्र उपमा वर्णन करना कवि परंपरा है अतः पारंपरिक कविस्वभाव की रक्षा करने के लिये जब दूसरी उपमा न मिली तो अन्योन्योपमा का वर्णन इस श्लोक में किया गया है ॥ २२ ॥

स्थली चुम्बच्चम्पा चटुल मुकुल श्रेणि युगली–
मुपान्ते निःक्रान्ता निभृत विदलद्दाड़िमदलात् ।
भजेद्वीज श्रेणी यदि रसमुखी तन्प्रिय सखी,
भवेदुर्वीजाते ! तव पद सरोजाङ्गुलिततिः ॥२३॥

हे उर्वी जाते	हे भूनन्दिनि श्री सीते ।
(यदि कश्चित्) स्थली	यदि किसी एक उपवन के किसी एक भूमि देश में
चुम्बत् चम्पा	विस्तृत चम्पा पुष्प की
चटुल मुकुल	सुन्दर कलियों की
श्रेणि युगलम्	दो पक्तियाँ होवें और वे
निःक्रान्ता (स्यात्)	कुछ आगे को निकली होवें और

(तस्मिन्) निभृत विदलत्
दाड़िम दलात् निःक्रान्ता
वीज श्रेणीम् भजेत्
यदि रस मुखी (स्यात्)
तत् तव पद सरोज
अंगुलिततिः
प्रिय सखी भवेत्।

उन्हीं कलियों में अत्यंत (पक करस्वतः) फटे हुये
अनार फल से निकले हुये
बीजों की पंक्ति लगी होवैं और वे
यदि कुछ अग्रभाग में अरुणरंग में रंगी होवैं
तब आपके चरण कमल के
अँगुलियों की पंक्ति की
बराबरी में कही जा सकती है।

र० प्र०–हे महि नन्दिनि तौ पद अंगुलि की उपमा किमि कोऊ रहै।
जो पद आकृति चम्पकली कहुँ पै विरचै विधि ध्यान लहै॥
दाड़िम के फल बीज सु तापर लै अँगुली नख तुल्य गहे।
लाली रचैं विधि आपने हाथ कुमार सँकोचित तुल्य कहे॥

इस श्लोक में अभूतोपमा द्वारा श्रीजानकीजी की पद अंगुलियों का वर्णन करते हुये उपवन समदेह, स्थली सम पद पृष्ठ, चम्पा की कलियों की पंक्ति के समान पद की अंगुलियाँ, अनारबीज के समान अंगुलियों की लालिमा और श्वेतताभिश्रित नख और रँगनेसम अंगुलियों के आगे नीचे भाग की लालिमा का वर्णन किया गया है॥ २३॥

पदाम्भोजे भोजे तवकुलिश चिन्हस्य मिषतः,
सदोङ्कारद्वन्द्वं कमल दल मृद्वङ्गि ! निवसत्।
श्रुतीनामाद्यन्तस्थितमभिमुखं वाङ्मय मुख,
किमासां सर्वासामिह वदति तात्पर्यमिति नो॥२४॥

हे भोजे !
हे कमल दल मृदु अंगि !
तव पद अम्भोजे
कुलिश चिन्हस्य
मिषतः

हे परमैश्वर्य सम्पन्ने ! श्रीसीते !
हे कमल दल से भी कोमल अंगवाली !
आपके चरण कमल में जो
बज्र का (त्रिसठ ६३ के आकार का) चिह्न है
उसके बहाने को धारण करके

द्वन्दम् ओंकारम् सत्	दो ॐकार उत्तम रीति से (एक दूसरे के सम्मुख होकर)
निवसत् ।	निवास करता है । और मंत्र ब्राह्मण रूप
श्रुतीनाम् आदि अन्त	सम्पूर्ण वेदों में आदि से अन्त तक
स्थित वाङ्मय	स्थित सम्पूर्ण शब्द मात्र का
मुखम्	प्रधान कारण (जो यह ओंकार है वह)
किम् इति नो वदति	क्या ऐसा नहीं कहता ? अर्थात् कहता है कि
आसाम् सर्वासाम् श्रुतीनाम्	"इन सम्पूर्ण श्रुतियों का समग्र तात्पर्य इन्हीं
तात्पर्यम् इह (चरणे अस्ति)	श्रीचरणों में है ।" यह हम सबों को जना
इतिः (अस्मान्) वदति ।	रहा है ।

र० प्र०—कमनीय महा पदपंकज से सब कोश भरे पवि अंकित जे हैं ।
अति कोमल नागरि त्रिसठ अंक समान मनौ युग ॐ धरे हैं ॥
मुख देखत आपुस में छव तीन ज्यों ब्राह्मण मंत्र समान अरे हैं ।
अघ पर्वत काटन हेत कुमार सिया पद बज्र सुध्यान करे हैं ॥

इस श्लोक में श्री जू के पाद पद्मों में स्थित बज्र चिन्ह का वर्णन करते हुये इन चरणों में ही सम्पूर्ण वेद तत्वों का समावेश बताया गया है । बज्र चिन्ह का आकार ६३ अंक के आकार का है । ३ ओंकार की आकार का है ६ इसी का उलटा है । इस तरह ६३ अंक में आद्यन्त ओंकार है । ६३ बज्र चिन्ह है अतः उसमें आद्यन्त ओंकार है और ओंकार में सम्पूर्ण वेद का तात्पर्य है इस तरह श्री जू के चरणों में वेद के सम्पूर्ण तत्वों का तात्पर्य स्थित हुआ ॥२४॥

दशेमाः प्रेमाप्त्यै त्वदमल पादाग्रे श्रुति शिखा,
निमग्ना जानीमः किल नखशिखा पंक्तिमिषतः ।
न कारोऽयं काकुं ध्वनयति खकारस्तु ख गुणं,
शिखाशब्दः शीर्षं कविरिति परन्तु स्मरतु मे ॥२५॥

त्वत् अमल पद अग्रे	आपके बिमल-स्वच्छ चरणों के अग्र भाग में
प्रेम आप्त्यै	प्रेम प्राप्ति के लिये

नखशिखा पंक्ति मिषतः
इमाः दश श्रुति शिखा
निमग्ना इति जानीमः

नखाग्र की पंक्ति के बहाने (वेद के शिरो भाग) ये दश (ईश केन आदि दशो ब्रह्म) उपनिषत् बास किये हैं। इससे हम ऐसा जानते हैं (कि प्रेम के निधान ये श्रीचरण ही हैं।)

अयम् न कारः
❀ काकुम्–ध्वनयति
ख कारस्तु
ख गुणम् ध्वनयति
शिखा शब्दः शीर्षं ध्वनयति

नख शब्द का यह न कार
वक्रोक्ति को प्रगट कर रहा है और
ख कार अर्थात् (ख) व्यंजन
आकाश के गुण शब्द को कहता है और
शिखा शब्द शिरो भाग को कहता है अर्थात् सीताजी की अँगुलियों में क्या ये श्रुति शिखा नहीं हैं किन्तु शब्द मात्र-सम्पूर्ण वेदों का शिरो भाग-शिखा इन्हीं श्रीचरणों को ही अपना प्रतिपाद्य विषय कह रहा है।

परन्तु मे इति (तत्वम्)
कविः स्मरतु।

किन्तु मेरे इस तत्व निर्णय को कवि लोग भी स्मरण करैं–बिचारैं कि मेरी बात कितनी यथार्थ है।

र० प्र०–श्रीसिय के पद प्रेम प्रवाहित नित्य निमज्जन चाह हृदै गुनि।
श्रुति शीर्ष स्वरूप दशौ नख में किय बास निरन्तर जाहि गुनै मुनि॥
मानैं सबै कवि सीख हमारि सुशास्त्र बिचारि कुमार कहै पुनि।
ध्यान करै सिय के नख को तेहि के उरमें निज वेद भरै धुनि॥

इस श्लोक में कहा गया है कि दश ब्रह्मोपनिषदों का तात्पर्य श्रीसीताजी के दश पाद नखों में पूर्णतया है अर्थात्-छान्दोग्य और बृहदारण्यक दो उपनिषदों का आकार बड़ा होने से उन दोनों का तात्पर्य दोनों पादांगुष्ठ नखों में है। इसी तरह कठ और तैत्तिरीय का तात्पर्य दोनों तर्जनी के नखों में है, प्रश्न और मुण्डक का

❀ भिन्न कण्ठ ध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते। (साहित्य दर्पण २। २३)
विरुद्ध अर्थ बोधक स्वर विशेष अर्थात् अस्वीकारोक्ति को इस ढंग से गुनगुना कर कहना कि सुननेवाले को वह स्वीकारोक्ति मालूम पड़े।

तात्पर्य दोनों मध्यमा के नखों में है। केन और ऐतरेय दोनों का तात्पर्य दोनों अनामिका के नखों में है और ईशावास्य तथा माण्डूक्य इन दोनों का तात्पर्य दोनों कनिष्ठा के नखों में सन्निहित है ॥ २५ ॥

समाजैः साम्राजां स्मृतिमजरसां सर्व भुवना
ऽम्बुजानां साम्राज्यं भजदुपनतच्छत्र ललितम् ।
अलं कुर्यात्तन्मे हृदय कमलं तेऽङ्घ्रि कमले,
ललामं यत्कामं कमलनयनार्द्धाङ्गि कमलम् ॥२६॥

हे कमल नयन अर्धाङ्गि !	हे राजीव लोचन श्रीरामभद्र जू की अर्धाङ्गिनी जू !
ते अंघ्रि कमले यत्	आपके (दक्षिण) चरण कमल में जो
ललामम् कमलम् तत्	अत्यन्त सुन्दर कमल का चिन्ह है वह
अजरसाम् साम्राजाम् समाजैः	देवताओं और चक्रवर्तियों के समाज से
सर्वभुवन अम्बुजानाम्	संपूर्ण लोकों के कमलों का
साम्राज्यम् भजत्	चक्रवर्ति राज्य ग्रहण करते हुये शोभित हैं
(इति) स्मृतम्	ऐसा कहा गया है। (चरण में कमल के पास छत्र का चिह्न है वह छत्र कमल चिह्न पर झुका है इससे वह कमल। से
उपनतच्छत्र ललितम्	समीप के झुके हुये छत्रचिह्न अति सुन्दर हो रहा है
तत् मे हृदय कमलम् अलंकुर्यात्।	वह छत्र मेरे हृदय कमल को सर्वदा यथेष्ट रूप से शोभित करता है। अर्थात् उस छत्र और कमल में मेरा हृदय कमल निरंतर लगा रहै, यही बारंबार प्रार्थना है।

र० प्र०—रघुचन्दअनन्दिनि राम प्रिये ! तब दाहिन पाद जो कंज लसै।
महि मंडल के चकवर्ति समूह सुरालय के सुर यूथ लसै ॥
छत्र लसे तिसु कंज ढिगे करि ध्यान महा महिमा विलसै।
इमि चाहै कुमार सदा सियके पगचिह्न से मो हिय कंज लसै ॥२६॥

सकंपा शंपा न त्यजति जलदाली जवनिकां,
न सन्ध्याऽन्तर्धानादितरमुचितं ध्यायति पुनः ।
विमुञ्चन्त्यारुण्यं तरणि किरणास्तूर्णमनघे !
तवालोक्यश्लोक्याश्चरण नखचिन्तामणिरुचः॥२७॥

हे अनघे !	हे सर्व दोष शून्ये श्रीसीते !
श्लोक्याः तव	उत्तम यशस्विनी आपके
चरणनख चिन्तामणि	चरण कमल के नखरूपचिन्तामणि के
रुचः आलोक्य	अरुण प्रकाश को देखकर
शम्पा सकम्पा (सती)	बिजली भय से काँपती हुई
जलदाली जवनिकाम्	मेघों की पंक्ति रूपी परदे को (कभी भी)
न त्यजति ।	नहीं छोड़ती अर्थात् हरदम परदे में छिपी रहती है (यदि कदाचित पद की सुन्दरता देखने निकलती भी है तो फिर उसी मेघ पंक्ति में छिप जाती है ।)
पुनः सन्ध्या (अपि)	और सन्ध्या भी पद नख के प्रकाश से लज्जित होकर
अन्तर्धानात्	छिप जाने (मुहूर्त मात्र के बाद अँधेरी रात में मुँह) छिपा लेने से
इतर उचितम् न ध्यायति	अन्य उपाय को उचित नहीं समझती है ।
पुनः तरणि किरणाः (अपि)	और सूर्य किरणों की लाली तो उदय काल में ही किंचित् देख पड़ती है, क्षण भर के बाद तो (पद नख की प्रभा लाली देखते ही वे किरणें भी)
तूर्णम् आरुण्यम् विमुञ्चति ।	(लज्जित होकर) शीघ्र ही अपनी लालिमा को त्याग कर आकाश में छिप जाती है ।

र० प्र०—यश शालिनि तो नख रत्न प्रकाश लखे भय से चपला डरपै।
कबहूँ तव दर्शन को निकरै पै सदा मधि मेघन में तरपै॥
लज्जित ह्वै के सदा यह साँझ अँधेरी निशामहँ जाइ छिपै।
नखलाली लखे हिय लाजि कुमार छिपै रविलाली अकाशहिं पै॥

इस श्लोक में माताजी के पद नखों की लाली का वर्णन करते हुये यह कहा गया कि विद्युत, सन्ध्या और प्रातःकालीन सूर्य की किरणों का क्षण मात्र में छिप जाने का कारण भय और लज्जा है जो कि श्रीसीताजी के चरण नख की लाली को देखने से होती है। सत्व प्रधान होने से उन्हें सदैव श्रीजू के पद नखों की प्रभा नित्य दीख पड़ती है इसी से आज भी ऐसा होता है ॥२७॥

सदाऽऽशास्ते यस्त्वत्परि चरणशीला चरणतः,
प्रहारप्राग्भारं कमपि कुसुमानां कलयतुम्।
अशोकस्य स्तोकोद्गत किशलयं तस्य विदुषां,
रसज्ञा सर्बज्ञे कथयतु कथं त्वत्पद सममू ॥२८॥

हे सर्वज्ञे !	हे सब कुछ जानने वाली श्रीसीताजी
यः (अशोकः)	यह जो अशोक वृक्ष है वह
त्वत्परिचरण शीला	आपकी चरण सेवा करने वाली किंकरियों के
चरणतः प्रहार प्राग्भारम्	चरण के प्रहार की अर्थात् चरणों को बारंबार उठाकर रखने की और
कुसुमान् कलयतुम्	फूलों के एकत्र करने की (अर्थात्) आपकी दासियां सदैव मेरे ऊपर पाँव रखा करैं जिससे उन युवती सुन्दरियों के पाँव रखने से मैं फूलता रहूँ और वे दासियां मेरे पुष्पों का चयन करके आपके अंग भूषण बनावैं इस तरह उनके बारंबार चरण रखने की)
सदा आशास्ते	सदैव अभिलाशा करता रहता है कि श्रीसीता जी का पद स्पर्श तो मुझ अभागे को क्यों

मिलेगा ? मेरे पुष्प ही उनके श्रीचरणों तक पहुँच जाते तो मैं कृतार्थ हो जाता और जन्मान्तर में आपके श्रीचरणों का कैंकर्य प्राप्त करता।

तस्य अशोकस्य	उस अशोक वृक्ष के
स्तोक उद्गत किशलयम्	निकले हुये नवीन कोमल पत्तों को
विदुषाम् रसज्ञा (रसना)	विद्वानों की रस जानने वाली जिह्वा
कथम् त्वत् पद समम् (कथयतु)।	कैसे आपके चरण के समान कह सकेगी कि आपके श्रीचरण अशोक किशलय के समान लाल हैं।

र० प्र०—चाहैं अशोक यही जियमें सियदासि सदा मोहिं पाद प्रहारैं।
जासों सदा हम फूलो करैं सोइ फूलन लै सिय सेज सवाँरैं॥
कोमल पल्लव लाल अशोक की कैसे रसज्ञन जीह उचारैं।
श्रीअवधेश कुमार प्रिया पग की तुलना नहिं चित्त विचारैं॥

"पादाघातेनाशोकस्य पुष्पोद्गमः कविषु प्रसिद्धः (काव्य प्रकाश ७) "स्त्रीणां स्पर्शात्प्रियंगुर्विकसति० 'काव्यप्रकाशटीका। "पादाघातादशोकं विकसति कविसमयगतंसत्कवीनां प्रवन्धे।" (साहित्यदर्पण ७) साहित्य संसार में प्रसिद्ध है कि युवती सुन्दरियों के पाद स्पर्श से असमयमें भी अशोक वृक्ष फूल उठता है। इसी साहित्यिक तथ्य को लेकर इस श्लोक में व्याजसे श्रीसीताजी के पद प्रान्तों की लालिमा का वर्णन किया गया है ॥२८॥

सुधोदग्रोदंचद्रस सुरतरोश्चित किशलये,
सुमस्तोमे प्रेमात्मनि यदि कलंकेन विकलाः।
कलाः प्रालेयांशोः किलमधुलिहस्त्वत्पद पुन-
र्भवानां दृष्टान्तं दधतु बसुधानन्दिनि तदा ॥२९॥

हे बसुधानन्दिनि !	हे भूमिकन्यके !
यदि उदंचत् रस	यदि पूज्यमान् (उत्तम) रस (है जिसका ऐसा जो)

सुधा उदग्रः	अमृत उससे (अमृत से जल से नहीं) सींचकर बढ़ाया गया हो जो रसीला
सुरतरोः चित् किशलये	कल्पवृक्ष, उसके चैतन्य रूप पत्तों में और
प्रेम आत्मनि सुमस्तोमे	प्रेम रूप फूलों के गुच्छों में
यदिकलङ्केन विकलाः	यदि सर्वथा कलंक रहित निर्दोष
प्रालेय अंशोः	घटने (बढ़ने) वाली किरणें हैं जिसकी ऐसे चन्द्रमा की
कलाः मधुलिहाः (स्युः)	कलायें ही पुष्परसास्वादन करने वाले भ्रमर हो कर रहें,
तदाकिल	तब तो किसी तरह (संकोच से ही कवियों द्वारा)
त्वत् पदपुनर्भवानाम्	आपके चरणों से पुनः पुनः बार बार उत्पन्न होकर सखियों द्वारा काटकर फेंक दिये जाने वाले
(नखानाम्)	नखों की
दृष्टान्तम् दधतु ।	उपमा पा सकता है ।

र० प्र०—भूमिसुते रसमय हरि चन्दनै सींचि सुधापय जो प्रति पालैं ।
चेतन पातन प्रेम सु फूलनमें शशि की रस रूप कला लैं ।
भौंर रचैं बिधि सेवन ताहि जो ऐसी अनूपम सृष्टि सम्हालैं ।
तौ हू कुमार कटे नख की उपमा कबिदेत सँकोचन हालैं ॥

माता श्रीजानकीजी के कटे हुये चरण नखों तक की उपमा कहीं नहीं ही मिल सकती, हाँ यदि उपर्युक्त रीति से अभूतपूर्व सृष्टि हो तो भी बड़े संकोच के साथ ही दृष्टांत दिया जा सकता है । इसीतरह बहुत पूर्व ही प्रातः स्मरणीय पूज्य पाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज ने भी पृष्ठ ७ श्लोक ३ के तत्पर्यार्थ में प्रकाशित एक अद्भुत कल्पवृक्ष की कल्पना करके भी उसको श्रीरामभद्र जू के हस्त कमल की छाया के बराबर भी नहीं मान कर (विनयपत्रिका में) यही कहा कि—

निशि वासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया ॥ २६ ॥

मणीमुद्रोद्गच्छत्किरण पटलच्छत्रविशदः,
प्रदेशिन्याश्लिष्टः शशिवदनया राग घनया ।
धनुष्पाणेः प्राणेश्वरि भवनुते राजति भवत्—
पदांगुष्ठो जुष्टश्चतुर मुनिभिः प्राण चमरैः ॥३०॥

हे धनुष्पाणेः प्राणेश्वरि !	हे धनुष् धारी श्रीरामभद्रजी की प्राणेश्वरी जू
हे भवनुते !	हे श्रीशंकरजी से स्तुति को प्राप्त जगज्जननी जू !
	आपके दोनो पद के अँगूठे उभयविभूती के दो राजा हैं कैसे कि
मणी मुद्रा	दोनो अँगूठों में जो मुद्रिका हैं उन दोनों में एक एक मणि जटित है
उद्गच्छत् किरण पटल	उन दोनो से निकलता हुआ जो किरण समूह है वही
छत्र विशदः	अंगुष्ठ महाराज का उज्ज्वल छत्र है (जो राजा)
राग घनया	अनन्त राग-लालिमा रूपी प्रेम है जिसमें ऐसी
प्रदेशिन्या	तर्जनी रूप चन्द्रमुखी सुन्दरी रानी से
आश्लिष्टः । यत्	युक्त है । ऐसा जो
भवत् पादांगुष्ठः	आपके चरणों का अँगूठा
चतुर मुनिभिः	प्रवीण-ज्ञानी मुनियों के
प्राण चमरैः	अन्तःकरण रूपी चँवर से
जुष्टः राजति ।	सेवित सदैव शोभित हैं ।

र० प्र०—धनुधारी प्रिये ! जगदम्बे ! तुम्हें करि नेम निरन्तर शंकर ध्यावैं ।
तव पाद अँगुष्ठ महायुग भूप जड़ीमणि सो सिर-छत्र सुहावैं ॥
तर्जनि चन्द्रमुखी पटरानी विवेकी मुनी गण ध्यान लगावैं ।
मन प्राणन चौंर कुमार करैं जन दानदया को महामुद पावैं ॥

इस श्लोक में दोनों पदांगुष्ठों को दो सम्राट रूप से वर्णन किया गया है

अंगुष्ठ दोहैं इसी से "मणी" द्विवचनान्त शब्द रखा गया है परन्तु छन्दानुरोध से सर्वत्र ऐसा (द्विवचनान्त प्रयोग) नहीं किया जा सका ॥ ३० ॥

कृपारूपे ! चापायुध विधुमुखि ! त्वत्पद नखात्,
कृपास्रोतश्चोद्यात्यनिशमिदमुद्योत कपटात् ।
जितेन्दुर्यद्विन्दुः सृजति सुखसिन्धून् सपदितान्
यदूर्मौ निर्मज्जन्त्यहह निखिलाः मुक्तिमहिलाः ॥३१॥

हे कृपारूपे !	हे कृपामयि माताजी !
हे चापायुध विधुमुखि !	हे धनुष्धारी श्रीरामभद्र जू जी चन्द्रवदनी !
त्वत्पद नखात् इदम्	आपके चरण नख से यह
उद्योत कपटात्	प्रकाश के बहाने से
कृपा स्रोतः	कृपा रूपी धारा का प्रवाह
अनिश्म् उत् याति च	निरन्तर ऊपर को जाता है और
यत् विन्दुः*	जिस कृपाधारा का एक एक बुन्द मात्र
जित इन्दुः (भवति)	चन्द्रमा को जीतनेवाला होता है (क्योंकि)
(सविन्दुः) तान् सुख सिन्धून्	वह विन्दु उन सुखमय समुद्रों को
सपदि सृजति यत् ऊर्मौ	तुरन्त उत्पन्न करता है जिसकी एक एक लहर में
निखिलाःमुक्ति महिलाः	सब मुक्ति रूपा सुन्दरी स्त्रियाँ

---

* साहित्याचार्य प्रोफेसर लाला भगवान् दीन का एक सोरठा सुना जाता है—

सिय मुख शोभा साज धोये हाथ विरंचि रचि ।
जल चुइभै द्विजराज करभारे तारे भये ॥

इसी तरह किसी का पद्य भी है—

ज्योति के गंज में आधोबराय विरंचिरची मिथिलेश दुलारी ।
आधो रह्यो तेहि को पुनि आधो कै सूरज चाँद प्रभान में डारी ॥
बाकी रह्यो तेहिको युगभाग कै एक तरैयन में छबि पारी ।
एकहि अँश ते तीनहु लोक की रूपवती युवतीन सँवारी ॥

निमज्जति	डूब जाती हैं अर्थात् भक्त जन उस कृपा सुख के आगे "मुक्ति निरादरि भक्ति लोभाने।"
अहह (इतिमहदाश्चर्यम्)	अहा (सामान्यजनो की दृष्टि में) यह बड़े आश्चर्य का विषय है।

र० प्र०—मातु दयामयि राम प्रिये ! नख कान्ति मनौ करुणामृत धारा।
जासु प्रभाव निरन्तर ऊरध जाइ बनै सुखसिंधु अपारा।
तासुखसिंधु सुसीकरतै विधिना विधु को जनु रूप सँवारा।
जानै कुमार सदा तेहि की प्रति ऊर्मिन डूबति मुक्ति सुदारा॥

इस श्लोक में नख प्रभा को कृपा प्रवाह रूप से वर्णन किया गया है। और जिसतरह चन्द्रमा को देख कर समुद्र बढ़ता है वैसे ही कृपावारिधारा के सीकर से अनंत सुख बढ़ता है॥ ३१॥

चकोरश्चन्द्रांशुं चुलुकयति चिद्रूपिणि यथा,
तथा चन्द्रोऽपि त्वच्चरण नख चन्द्रांशु निचयम्।
चकासत्वच्चिन्ता चरण चण चण्डीश चिकुरे,
क्षयाचान्तोऽप्यञ्चत्ययमुपचयं तेन चतुरः॥३२॥

हे चित् रूपिणि !	हे ज्ञानस्वरूपे शुद्धचिन्मय विग्रहे !
यथा चकोरः चन्द्र अंशुम्	जैसे चकोर पक्षी चन्द्रमा की किरण को
चुलुकयति, तथा चन्द्रः अपि	पान करता है, वैसे ही चन्द्रमा भी
त्वत् चरण नख चन्द्र—	आपके चरण नख चन्द्र के
अंशु निचयम् चुलुकयति।	किरण समूह का पान करता है।
(तस्मात्) क्षय आचान्तः अपि	इसी से-कृष्ण पक्ष में कलाओं के घट जाने पर भी
(पुनः) उपचयम् अंचति।	शुक्ल पक्ष में पुनः वृद्धि को प्राप्त करता है।
तेन चतुरः चन्द्रः	इसी कारण से चतुर चन्द्रमा
त्वत् चरण चिन्ता चणं	आपके चरण चिन्तन करनेवालों में प्रवीण
चण्डी ईश चिकुरे	चण्डी (भवानी) पति के ललाट (केशदेश) में
चकासत।	शोभा देता है।

र० प्र०–पीवैं चकोर यथा शशि की कर त्यों शशि तो नख चन्द्रिका पीवै।
ज्ञानमयी सिय चिद्वपुषे! तेहि ते शशि कृष्ण कुपक्षहु जीवै॥
तो पद चिन्तक शंकर जू तेहि ते शशि लै निज शीश धरी वै।
चातुर शंकर चन्द्र 'कुमार' जू याते हृदै तव भक्ति भरी वै॥

चन्द्रमा के शुक्ल पक्ष में बढ़ने का कारण श्रीसीताजी के पद नखों की किरणामृत का पान करना है श्रीसीताजी के चरण नखों में अनुराग देख कर ही महाभागवताग्रगण्य शंकरजी ने उसे अपने ललाट में धारण कर लिया है॥३२॥

यदम्भो दम्भोलिर्दुरित गिरि दर्पोपशमने,
सिरः शम्भोरम्भोरुहनयनरम्भोरु भजते।
सदङ्गा सा गङ्गा त्वदिन सम रङ्गासनतला—
नुषङ्गात्त्वत्तुङ्गाङ्घ्रिज रुचि तरङ्गान् बहति के॥३३॥

हे अम्भोरुहनयन रम्भाउरु	हे कमलनयन श्रीरामजी की कदलि उरुवाली!
यत् अम्भः दुरितगिरि –	जो जल पापरूपी पहाड़ के
दर्प उपशमने दम्भोलिः।	अभिमान को नाश करनेवाला वज्र है।
यत् अम्भः शम्भोः शिरः भजते।	जोजल शिवजी के शिर पर बसता है।
सत् अङ्गा सा गङ्गा	उस परमोत्तम जलवाली वे गंगाजी
त्वत् इन सम रंग आसन—	आपके सूर्यवत् प्रकाशित मणिमय सिंहासन के
तल अनुषङ्गात् त्वत्	तल के संबंध से आपके
तुङ्ग अंघ्रिज रुचि तरंगान्	उन्नत चरण नखों की सुन्दर तरंगों को अपने
के बहति।	शिर पर धारण करती हैं। अर्थात् गंगाजी का परम प्रभाव हुआ है श्रीसीताजी के पद नखों के प्रकाश को धारण करने से।

र० प्र०–पाप पहाड़ प्रणाशन को पवि जो जल शंकर शीश लसै।
सो हिम जन्हुसुतासियपायँ प्रछालि तरंगन सों विलसै॥
राम प्रिये! यहिते अति पावनि गंग त्रिलोकनि पाप नसै।
यों गुनिभूरि प्रभाव कुमारहु लै मन श्री पद कंज बसै॥

श्रीशिवजी ने गंगाजी को शिर पर इसलिये धारण किया है कि गंगाजी सदैव श्रीसीताजी के सूर्य सम रत्नमय सिंहासन के नीचे चन्द्रकांत मणियों का रूप बना कर श्रीसीताजी का चरण स्पर्श करती रहतीं हैं ॥ ३३ ॥

करं डिम्भः शम्भोरमरसरिदम्भोरुह धिया,
सुधा स्रोतः प्रोतस्मृतिरहिपतिः सर्व रसनाः ।
विरञ्चेर्विश्चञ्चुं विसचयरसाच्चञ्चलयति,
त्विषां पूरे दूरादमृतनिधिपुत्री पद रुहाम् ॥३४॥

अमृत निधि पुत्री पदरुहाम्	श्रीजनकराज कन्या के पद नखों की —
त्विषाम् पूरे दूरात्	प्रभासमूह = दीप्ति प्रवाह में दूर से ही
अमर सरित् अंभोरुह धिया	देव नदी आकाश गंगा में खिले हुये कमल की बुद्धि से
शम्भोः डिम्भः	शिवजी के पुत्र श्रीगणेशजी
करम् चञ्चलयति ।	अपनी शुण्ड को हिलाते हैं । और
(तत्त्विषांपूरे) अहिपतिः	उसी दीप्ति प्रवाह को श्रीशेषजी
सुधास्रोतः प्रोतः स्मृतिः	अमृत की धारा समझ कर उसमें
सर्वरसना दूरात् चञ्चलयति ।	अपनी सम्पूर्ण जीभों को दूर से ही लपलपाते हैं।
(एवं) विरञ्चेः विः	इसीप्रकार ब्रह्मा का पक्षी = हंस भी
विस चय रसात्	कमल की जड़ (मृणाल-भँसेड़) के भ्रम से उसका रस लेने के लिये—
चञ्चुम् दूरात् चञ्चलयति ।	अपनी चोंच को दूर से ही घुमाता है । अर्थात् गणेश, शेष और विधिवाहन हंस, इन सबों को अपने अपने भोग्य पदार्थों के भ्रम से आपके चरणों की दीप्ति के प्रवाह में चंचलता होती है ।

र० प्र०—श्रीसिय की नखपाद प्रभा लखि देव नदी महँ कंजहि जानी ।
श्री गणराज हलावत शुंड बुझावत हैं तब शम्भु भवानी ॥

शेष सबै रसना लपकावत पाद प्रभाहिं सुधासरि ठानी।
बिधि हंस मृणाल मनैंगुनि चंचल चोंच कुमार सुदूर भ्रमानी॥

(क) इस श्लोक में 'भ्रान्त्यलंकार' द्वारा श्रीसाताजी के चरण नखों की प्रभा का बिशद रूप से वर्णन किया गया है।

(ख) जिस तरह श्रीजानकीजी के भाई वीरध्वजजी का एक नाम लक्ष्मी निधि भी प्रसिद्ध था उसी तरह श्रीजानकीजी के पिता श्रीसीरध्वजजी का नाम ज्ञानामृत के समुद्र होने से अमृतनिधि भी प्रसिद्ध था॥ ३४॥

द्युगङ्गा गाङ्गेयाम्बुजगणरजः पिञ्जर तनून्,
प्रबालास्यैरालंबित नखमृणालाङ्कुर लवान्।
मरालानाम्बालाननुसरति किं तावक पदा—
ङ्गुलीनाम्मालेयङ्गति जित मरालेऽब्जनिलये॥३५॥

हे गति जित मराले !	हे अपनी चाल से हंस की गति जीतने वाली
हे अब्जनिलये	हे कमलवन विहारिणी श्रीसीताजी !
तावक पद अङ्गुलीनाम्	आपके चरण कमल की अँगुलियों की
इयम् माला किम्	यह पंक्ति क्या -
द्युगङ्गा गाङ्गेय	आकाश गंगा तथा भूगंगा में खिले हुये
अम्बुज गण रजः	स्वर्णात्मक कमल समूह की पराग से
पिञ्जर तनून्	पीत हो रहे हैं शरीर जिनके वे अपनी
प्रवाल आस्यैः	मूंगे (या-नवीन कमलके पत्ते) के समान चोंच
आलम्बित मृणाल अंकुर	से पकड़े हों कमल की जड़ के
लवान्	एक भाग को, यदि ऐसे
मराल बालान्	हंस के बच्चे हों तो उनका
नख अनुसरति।	अनुसरण नखों द्वारा (आपकी पदांगुलियाँ) करती है ? अर्थात् यदि ऐसी उपर्युक्त प्रकार की अभूतोपमा होवे तबतो आपके पदांगुलियों की उपमा पो सके।

श्री मणिराम दास छावनी सेवा ट्रस्ट

र० प्र०—गति जीती मरालन औ गजकी सुनु कंजविहारिणि राम प्रिये।
नभगंगज औ महिगंगज कंज पराग लगे तनु पीत किये॥
स्वच्छप्रबाल जड़े जनु चंचुहिं पोत मराल मृणाल लिये।
इहि भाँति बनी पद अँगुलिमाल कुमार कोऊ उपमा-न दिये॥

इस श्लोक में श्रीसीताजी की पदांगुलियों को श्वेत शरीर में पीतपराग लगे हुये हंसपोतों की, नखों को कमलमूल (श्वेतमृणाल) की, नखाग्र भाग को कमलांकुर की और अँगुलियों के नीचे की लालिमा को लालरंग की चोंच (मुखों) की कल्पना करके उपमा वर्णन की गई है॥ ३५॥

इयंलाक्षा साक्षात्कृत सुकृत कल्पद्रुम फला—
शिलापृष्ठे पिष्टा ज्वलदनल कल्लोलित जले।
परिक्षिप्ताव्यक्ती भवदतुलरक्तिः श्रुतशिरो,
विमृग्यं सौभाग्येश्वरि तवपदं रञ्जयति या॥३६॥

हे सौभाग्येश्वरि !	हे सम्पूर्ण सौभाग्यों की स्वामिनि !
इयम् लाक्षा	जो यह लाख (अश्वत्थया पलाश का गोंद) है
(सामहातपस्विनी। यतः)	वह बड़ी भारी तप करनेवाली है। क्योंकि
श्रुति शिरः विमृग्यम्	उपनिषद् मंत्र जिसे नित्य खोजते हैं—
तव पदम् रञ्जयति।	उन आपके पदको महावर बनकर शोभित कर रही है।
(यस्मादियंमहातपस्विनी)	जिससे कि यह महातपस्विनी लाख अर्थात् लाक्षाभिमानी देवता —
सुकृत कल्पद्रुम (स्य) फलसाक्षात्कृत।	प्रथम तो अनेक जन्मों के पुण्यरूपी कल्पवृक्ष के फल में गिनी जाती है अर्थात् स्वपुण्य कल्पतरु के फल को हस्तगत कर लिया है।
आ (समंतात्) शिलापृष्ठे पिष्टा ज्वलत् अनल कल्लोलित जले परिक्षिप्ता (ततः)	फिर सिल पर खूब पीसी गई। फिर प्रज्वलित अग्नि पर चढ़े अतएव खौलते हुये जलमें छोड़ी गई तब उस लाक्षा में

अतुल रक्तिः व्यक्ती भवत् । — अपरिमेय अत्यन्त उत्तम रंगरूप अनुराग प्रगट (उत्पन्न) हुआ है अतः इस लाक्षा के महद्भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है ॥

र० प्र०—पुण्य सुरद्रुम से कढ़ि के तनु पीसि शिला पुनि अग्नि तपाती ।
धन्य महातप सालिनी लाख महावरि ह्वै सिय प्रेम सुमाती ॥
जो पग ढूँढ़त वेद रिचागन ता पद में लपटी दिन राती ।
सौभगस्वामिनि रामप्रिये ! तिसुभाग्य कुमार कहै केहि भाँती ॥

यहाँ आलंकारिक रूप से यह बताया गया है कि अनेक जन्मों के सुकृती भक्तों का संक्रांत नामक प्रेम जब बढ़ने की पराकाष्ठा को पहुँच जाता है तब ही श्रीसीताजीके श्री चरण कमलों की साक्षात्प्राप्ति होती है । जैसे लाखको पत्थर पर पीस कर तप्तजल में डालने से अधिक चटकीला रंग निकलता है । इसी तरह प्रेमियों को ज्यों ज्यों अधिकाधिक कष्ट पड़ता है त्यों त्यों प्रेमानुराग अधिकाधिक बढ़ता जाता है इसीका नाम संक्रान्त प्रेम है संक्रान्त प्रेमी की एकमात्र यही ही अभिलाषा रहती है कि—

' जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं । तहँ तहँ ईश देहु यह हमहीं ॥
सेवक हम स्वामी सिय नाहू । होउ नात यहि ओर निबाहू ॥"
"जेहि ज्योनि जन्मौ कर्म वश तहँ राम पद अनुरागऊँ ॥" ॥ ३६ ॥

सखी पक्ष्म प्रक्षालित भवदलक्तांघ्रि सलिलं,
दयाक्लिन्ने-क्लिन्नां विरचयति यां कामपि महीम् ।
अहं तस्याः पांशुः कथमहह भूयांसमथवा,
कुतो न स्यां मंत्रैर्यदि कुलिशपत्रैश्चदलनम् ॥३७॥

हे दयाक्लिन्ने ! — हे दयार्द्र भूते ! (कृपापूर्ण चित्तवाली दयासे भीगी)
पक्ष्म (इव) — जिस तरह पलकैं नेत्रगोलक की सावधानी पूर्वक रक्षा करती हैं उसी तरह—
सखी प्रक्षालित — सखियाँ जब अपने कोमल कर कमलों से धोती हैं

भवत् अलक्त अंघ्रि-	आपके महावरि युक्त चरण को उस समय वह महावरियुक्त लाल रंग का
सलिलम् यां यां अपि महीम्	जल जिस किसी भी जगह पृथ्वी को
क्लिन्नाम् विरचयति	भिगाकर लाल वर्ण कर देता है—
तस्याः भूमेः पांशुः	उस भूमि की धूलिकण
अहम् कथम् भूयासम् ।	मैं कैसे (किस प्रकार के साधनादि से) हो सकूँगा।
अथवा यदि	अथवा—एक बात हो सकती है कि यदि
कुलिश पत्रैः मंत्रैः	सौ धार वाले बज्र के आरों से
दलनम् (स्यात् तर्हि अहम्)	मेरा शरीर परमाणु कर दिया जाय तो मेरी देह और मैं
तस्याः भूमेः पांशुः	उस भूमि का रजः कण
कुतः न स्याम् ।	क्या न हो सकूँगा ? किन्तु हो सकूँगा ही।

र० प्र०—पालैं सदा पलकैं दृग गोलक त्यों सखितौपद पद्म पखारैं।
सो जल रंजित पाइमहावरि लाल जहाँ की मही करि डारैं॥
जो शतपर्व सुरेन्द्र करोत लै मों तन कै कणिका महि पारैं।
सो कण क्योंहू परै तेहि ठौर सुभाग्य कुमार कवीन्द्र विचारैं॥

पिछले छत्तीसवें श्लोक से संबंध रखते हुये इस श्लोक में यह चाहना की गई है कि यह महावरि तो मैं बन ही नहीं सकता, क्योंकि वैसा प्रेमात्मक सुकृत ही मुझमें नहीं है। हाँ यदि श्रीजू की कृपा प्रेरणा से कालदेव मेरे अनन्त जन्मों में भोगनेवाले समस्त संचित दुष्कृतों को इसी वर्तमान (एक ही) शरीर से भोग करवादें अर्थात् शतधारात्मक वज्र के अरों से बारंबार (चीर) कर परमाणु परमाणु अलग कर दें तो मैं अवश्य उस यावक युक्त चरण कमल के धोवन जल के प्राप्त करने का अधिकारी बन सकूंगा, ऐसा मेरा अपना विश्सास है॥३७॥

सुरैर्मुक्ता मुक्तास्तवक निकरास्त्वच्चरणयोः,
पुरः सोमस्तोमा इव सपदि तत्तद्भुवनतः।

उपेतास्त्वांमेते शरण ममले त्वत्पदसुहृत्—
सरोजानामोजः क्षपणकृतमागः क्षपयितुम् ॥३८॥

हे अमले !	हे निर्मलमूर्त्ति श्रीसीताजी !
त्वत् चरणयोः पुरः	आपके दोनों चरणों के समीप जो
सुरैः मुक्ताः	देवताओं द्वारा अर्पण किये गये ये
मुक्तास्तवक निकराः	मोतियों के जो बहुत से गुच्छे पड़े हैं वे
तत् तत् भुवनतः	भिन्न भिन्न अनेकों ब्रह्माण्डों से
त्वत् शरणं सपदि उपेताः	आपकी शरणमें बहुत शीघ्रता से आये हुये
सोमस्तोमाः इव ।	चन्द्रमाओं के झुण्डों के समान हैं ।
ततत्वत् पदसुहृत सरोजानाम्	उन सबों ने आपके चरणों के मित्र रूप कमलों की
ओजः क्षपणकृतम् ।	शोभा को नष्ट कर दिया है । उस
आगः क्षपयितुम्	कमल द्रोहरूपी अपराध को क्षमा कराने के लिये
उपेताः (इतिजानीमः) ।	आये हैं ऐसा हमें मालूम पड़ता है ।

र० प्र०—देवन अर्पित मोतिन गुच्छ सिया पद प्रान्त लखे मन मोहैं ।
मानो जुरे ब्रह्माण्डन के शशि राम प्रिया पद पल्लव गोहैं ॥
ता पद मित्र स्वरूप सुकंज प्रभाविनशे अपराध अछोहैं ।
ताहि क्षमावन हेतु कुमार सबैशशि मुक्तन रूप धरोहैं ॥

देवतागण जब श्रीसीताके चरण दर्शन को आते हैं तब भेंट स्वरूप मुक्ता-मोतियों की रत्नांजलियां अर्पण करते हैं । उन श्रीजू के चरणों के पास बिखरी मुक्तामणियों का वर्णन उत्प्रेक्षा-अलंकार द्वारा इस श्लोक में किया गया है ॥३८॥

किमेतौ लोहित्याम्बुधिसमुदितौ बिद्रुम तरू,
प्रबालावाऽऽहोस्विल्लवणिम रसालस्य सरसौ ।
प्रसत्तिस्त्वर्वापी कमलमुकुलौ किंस्विदतुलौ,
हरेराह्लादिन्या किमुत चरणौ सर्व करुणौ ॥३९॥

एतौ तव चरणौ	हे माताजी आपके ये दोनों चरण
किम्[1] लोहित्य अम्बुधिसमुदितौ	क्या लाल समुद्र से प्रगट हुये-अत्यंतस्वच्छ
विद्रुमतरू, आहोस्वित्	लाल–मूँगे के दो वृक्ष हैं ? अथवा
लवणिम रसालसरसौ	अत्यन्त सौन्दर्य मय और खूब रसभरे हुये आमके
प्रवालौ	नवीन कोमल पल्लव हैं ?
किं[2]स्वित् प्रसत्ति स्वर्वापी	अथवा प्रसन्नतारूपी देवगंगामें प्रगटी हुई
कमल मुकुलौ	स्वर्ण कमलकी दो अर्घ विकसित कलियाँ है ?
किम् उत् हरेः	अथवा क्या श्रीरामभद्रजू को
आह्लादिन्याः	परम प्रसन्न करनेवाली उनकी आद्याशक्ति आपके
अतुलौ सर्व करुणौ[3]	निस्सीम महिमा वाले सर्व प्रकार की करुण से
	भरे हुये
तव चरणौ ।	आपके श्रीचरण हैं ? इत्यादि उपर्युक्त संदेह
	मुझे आपके चरणों के दर्शनों से होता है ।

र० प्र०–हे सिय ये युगरावरे पाँय कि लोहितसिन्धुज विद्रुम के तरु।
कै अति शोभन दिव्य रसाल सुकोमल पल्लव के दलहैं वरु॥
आनँद देवनदीज सु पंकज स्वर्ण की द्वै कलिका न खिली धरु।
राम कुमार प्रसन्नता हेतु किधौं अह्लादिनि की करुणा भरु॥

यहाँ सन्देहालंकार से श्रीजू के सुकोमल लाल चरणों का वर्णन किया गया है ॥ ३६ ॥

१—मंदप्रभ विद्रुम की अति व्याप्ति वारणार्थ लोहित समुद्रोत्पन्न कहा।

२—प्रवालोऽस्त्री किशलयेवीणादण्डे च विद्रुमे ॥ (मेदिनी)

३—"दुःख दुःखित्वमार्तानां सततं रक्षणोत्वरा।
पर दुःखानुसंधानाद्विह्वली भवनं विभोः ॥
कारुण्याख्य गुणोह्येष आर्तानां भीति वारकः ॥"
अत्यन्तमृदु चित्तत्वमश्रु पातासकृद्द्रवत्।
कथं कुर्यां कदा कुर्यामाश्रितार्ति निवारणम् ॥"

यदग्रे प्रत्यग्रंजलजमजतामेव रशना,
प्रसिद्धः सन्नद्धो नव किशलयः पल्लव तया ।
पदस्यैतस्यैवं रसमपि तवैकापिन तुला,
तदप्येतल्लप्यं कथमपि तुला कोटि कलितम् ॥४०॥

तव एतस्य पदस्य (मध्ये)	हे मातः ! आपके इस श्रीचरण के मध्य में जो
रसम् अपि एका अपि	रस है उस रस की कोई एक भी
तुला न (सम्भवति इति) प्रसिद्धः ।	उपमा नहीं हो सकती, यह सर्व प्रसिद्ध है ।
तदपि रशना सन्नद्धः	तोभी नूपुर युक्त होने से
एतत् भवत्याःपदम्) कथम् अपि	आपके इस श्रीचरणको किसी प्रकार
तुला कोटि कलितम् लप्यम् ।	उपमा श्रेणी में जाने के लिये कहा जाता है । कि
नव किशलयः प्रत्यग्रम्	नवीन पत्रांकुर के ऊपर अति नवीन
जलजम् अजताम्	पीत कमलकी कलियाँ उत्पन्न (लगी) हों
तत् अपि	तोभी वह उपमा
पल्लव द्वया भवति ।	नाम मात्र की ही होगी क्योंकि नवीन पत्ते में कमल नहीं खिलता है और यहाँ पद रूपी पत्ते से नूपुर रूप कलिका प्रगट हुई है ।

र० प्र०—रामप्रिये ! तव पाँयन के रसकी उपमा कहुँ नेकु न तूलैं ।
तौहू जबै युत नूपुर भे तबहूँ उपमा कविदेत सु भूलैं ॥
नव नीरज पल्लव से निकसी कलिकामधि भृंग रणैं अनुकूलैं ।
सो सुनि कै मन रामकुमार अनन्दित प्रेम हिंडोलन भूलैं ॥

यहाँ विरोधाभास रूप से पदनूपुरों का वर्णन करते हुये नवीन पुरइन वत् पदको और स्वर्णनूपुर को पीत कमल की कलिका की उपमा दी गई है ॥ ४० ॥

स्पृशन्तो यां शक्रोपल शकल चक्रांशु लहरी,
सवर्णेयं वेणी कलयति बलच्छैवल रुचम् ।

स्पृशंत्यंकं प्रेमांकित विरचितं कुंकुम मयं,
प्रिये विष्णोःपार्ष्णिः कनक नलिनी कन्द इव ते ॥४१

हे विष्णोः प्रिये !	हे सर्व व्यापक श्रीरामजी की प्रियतमे !
याम् (पार्ष्णिम्) स्पृशन्ती	जिस एँड़ीको स्पर्श करती हुई
शक्र उपल शकल चक्र–	श्याम इन्द्रमणि के टुकड़ों के समूहों की
अंशुलहरी सवर्णा	किरणों के समान चमकती हुई
इयम् वेणी	आपकी यह वेणी
शैवल रुचम् वलत् ।	सेवार की कांतिको वेष्टित (धारण) करती है ।
प्रेम अंकित	अत्यन्त अनुराग पूर्वक लिखे गये हैं
कुंकुम मयम् विरचितम्	केशर रस से सुन्दर चित्र जिस पर है ।
विष्णोः अंकम्	ऐसे श्रीरामजी की गोद को
स्पृशंती इयम् ते पार्ष्णिः	अलंकृत करती हुई वेणी से युक्त यह आपकी एँड़ी
कनक नलिनी कन्दः	स्वर्ग कमलिनी की मृणाल (भंसेड़)
इव कलयति	के समान शोभा दे रही है ।

र० प्र०–राम प्रिये तव एँड़िन लौं यह वेणी लसै किमिकै कहि जावैं ।
ज्यों बहुतै मघवामणि की किरनैं निज श्याम प्रभा दरशावैं ॥
प्रेम सरोवर के सु सिवार कि कुंकुम कूचिन चित्र सजावैं ।
अंक अलंकृत रामकुमार कि हेम सुकंज मृणाल सुहावैं ॥

"दीर्घा वेणी प्रशस्यते" इस सामुद्रिकशास्त्रानुसार एँड़ी तक लटकती हुई दीर्घावेणी (केशपाश) से संयुक्त एँड़ी (पाद के पृष्ठ भाग) का वर्णन इस श्लोक में किया गया है ॥ ४१ ॥

मदग्रे माध्वीकव्रजरवः किं पिकबधू—
कलः किं वल्लक्यः कणितमपि किं पंकजदृशाम् ।
क्वणन्त्येवं देवि ध्वनियितुमिमाः सर्वनमतां—
शरण्ये किंकिण्यस्तव चरणयोः किं किमितिकिम् ॥४२

हे सर्वनमतां शरण्ये देविः !	सबसे नमस्कार किये जाने वाले ब्रह्मा शिवादिकों की रक्षा करनेवाली हे दिव्य स्वरूपे ।
मदग्रे माध्वीकव्रज –	मेरे सामने वसंत ऋतुके मतवाले भ्रमर समूहों का
मदरवः किम् ? (तथा)	मद से भरा गुंजार क्या है ? और
पिकवधू कलः किम्	कोयल की कलकाकली (सुंदर शब्द) क्या है ?
(तथा च) पंकजदृशाम्	कमलनयनी श्री सरस्वती की
वल्लक्यः क्वणितम् किम्	वीणा की झंकार क्या है ? अर्थात् कुछ नहीं
एवम् ध्वनयितुम्	इसी बात को जताने के लिये
तव चरणयोः इमाः किंकिण्यः	आपके चरणों की ये नूपुर की घूंघुरैं
किम् किम् किम् इति क्वणन्ति ।	किं किं किं ऐसा शब्द कर रहीं हैं ।

र० प्र०–शरणागत पालिनि रामप्रिये विधिशंकर तोहिं निरन्तर ध्यावैं ।
तवनूपुर किम् किम् गुंजि विचार करैं हमरी सरि कोजग आवैं ॥
का गिनती मधुमत्तमिलिन्दनि कोकिल काकलीहू न सुहावैं ।
वाणी सुवीण रणैं अतिझंकृत तौहूँ कुमार कहां तुलि पावैं ॥

इसश्लोक में भ्रमर, पिक और शारदाजी की वीणा आदि जितनी भी मनोहर शब्द करनेवाली वस्तुयें हैं सबके तिरस्कार करने वाले नूपुरों के शब्दों की उत्प्रेक्षा की गई है । गोस्वामी श्री तुलसीदासजी महाराजने दूसरी तरह की उत्प्रेक्षा श्रीरामचरित मानस में किया है कि—

नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी ।
मनहु प्रेमवश विनती करहीं । हमहिं सीय पद जिनि परिहरहीं ॥
भक्तों एवं कवियों की सूझबूझ निराली ही हुआ करती है ॥ ४२ ॥

त्रयी चूड़ा क्रीडत्त्रिदश तटिनी स्वर्ण नलिनी,
सभोत्तंसो हंसः स्पृशति न शुचिं त्वत्पद मतिम् ।
मदान्धोऽयं पुष्पन्धयनिचय संबंध मलिनः,
स्पृशेदम्बस्तम्बेरमकुलमणिस्तां बत कथन् ॥४३॥

हे अम्ब !	हे माता श्रीसीताजी !
त्रयी चूड़ा	त्रिकाण्डात्मक वेदमें वर्णित अथवा त्रिगुणात्मक त्रिनयन श्री शंकरजी के शिरोभाग में
क्रीड़त् सुरतटिनी	विहार करती हुई देव नदी श्रीगंगाजी में
स्वर्ण नलिनी सभाउत्तंसः	सुवर्णात्मक कमल के समूहों का शिरोभूषणभूत
हंसः त्वत् शुचिम् पदगतिम्	जो हंस है वह भी जब आपके पदविन्यास को
न स्पृशति (तर्हि)	नहीं छू सकता अर्थात् आपकी चाल का किंचित् भी अनुसरण नहीं कर सकता। तब भला
अयम् स्तंबेरम कुलमणिः	यह गजेन्द्रों के वंश में सर्व श्रेष्ठ ऐरावत आपकी
ताम् (गतिम्) कथं स्पृशेत्	उस पद गति का अनुसरण कैसे कर सकता है ?
वत (यतः) अयम् मदान्धः	क्योंकि एक तो यह ऐरावत स्वयं मदान्ध है दूसरे
पुष्पन्धय मलिनः	पुष्परस पीनेवाले भ्रमरों के अमूह अथवा— पुष्पिणी हथिनियों के समूह के
सम्बन्धय निचयः	सम्बन्ध से मलिन हो रहा है।

र० प्र०—शंकर शीश विहार करै श्रुति सर्व प्रशंसित जो सुर धारा।
ता जल में खिले हेम सुकंजन शीश विहार करै बहु वारा॥
सोउ मराल कुमार लखे सिय चाल झँखै अतिही हिय हारा।
जो मद अंध करेणु मिलिंदनि कीन्ह मलीन कहाँ गज पारा॥

"इभः स्तम्बेरमः पद्मी यूथनाथस्तुयूथपः। मतंगजोगजः"···अमरः। पुष्पन्धयय का अर्थ भ्रमर और स्त्री दोनो होता है क्योंकि स्त्रियों के मासिक धर्म का नाम भी पुष्प है "ऋतुमत्यप्युदक्यापि स्याद्रजःपुष्पमार्तवः।" (अमरः) इसी से यहां पुष्पन्धय का अर्थ पुष्पिणी हथिनी और भ्रमर दोनो किया गया हैं क्योंकि दोनों की संगति बैठ जाती है।

प्रियमित्र पं० श्री पुरुषोत्तमाचार्य त्रिपाठीजी ने अपने कानन महाकाव्य में कितना सुन्दर कहा है—

इकगजेन्द्र चलामग जात था, वदन पै निज पांसुल फेंकता।
तलमलात तले तरु वृंद के, निज पराभव देति कहां न त्रपा॥

इस श्लोक में 'कैमुत्यन्याय' से श्रीसीताजी की पदगति (चाल) का वर्णन किया गया है ॥ ४३ ॥

बहिर्द्वारि द्वैमातुर सुरपतिप्रख्य मखभुक्—
कदम्बे सम्बद्धाञ्जलि बलित मौलि स्थितवति ।
चकोरी भूयासौकिमवनि किशोरी चरणयो—
र्नखेन्दूनामंशून् रसयतु वसन दूरमजिरात् ॥४४॥

(हे श्रीरामभद्र मे इमं मनोरथं पूरयेत्) किम् ?	हे श्रीरामभद्र जू क्या मेरा यह मनोरथ पूरा होगा ? कि
(यस्याः) वहिः द्वारि	जिनके महल श्रीकनक भवन के दरवाजे के बाहर
द्वैमातुर सुरपति प्रख्य	गणेश और देवराज इन्द्र आदि
मखभुक् कदम्बे	यज्ञ में भाग पानेवाले देव श्रेष्ठों के झुण्ड के झुण्ड
सम्बद्ध अञ्जलि	हाथ जोड़े हुये और
मौलि वलित स्थितवति	शिर झुकाये खढ़े रहते हैं । उस महल के
अजिरात् दूरात् वसन् असौ	आँगन से दूर रहते हुये मेरी यह चित्त वृत्ति
चकोरी भूय अवनि किशोरी	चकोरी होकर भूनन्दिनी श्रीसीताजी के
चरण नख इन्दूनाम्	चरण नख चन्द्रों की
अंशून् रसयतु ।	किरणों का पान करै ।

र० प्र०—हे रघुनाथ विनय सुनि के मम कीजिये पूर मनोरथ स्वामी ।
श्रीसिय के मणि मन्दिर द्वार गणेश सुरेश खड़े सुर नामी ॥
महि नन्दिनी कै पद चन्दिनि चाहि चकोरी लहै मम बुद्धि गुलामी ।
पान करै पद प्रेम सुधा बसुधा तल बीच कुमार कुग्रामी ॥

यहां इस श्लोक में असूर्यम्पश्या श्रीजानकीजी के चरण कमलों का प्रत्यक्ष दर्शन दुर्लभ जानकर नख प्रभा दर्शन प्राप्ति के लिये प्रार्थना की गई है ॥४४॥

महः सिन्धू पंकेरुह कुमुद बन्धू त्रिभुवन—
प्रदीप्तौ यद्दीप्तौ भवत इव खद्योत पृथुकौ ।
अशेष स्थानेषु ध्रुव सुख विशेषं विदधती,
विचित्रोर्वी पुत्री पदरुह ततिर्मङ्गलमयी ॥ ४५ ॥

महः सिन्धू	तेज कान्ति महिमा के समुद्र और
त्रिभुवन प्रदीप्तौ	भूर्भुवः स्वः तीनो भुवनों के प्रकाशक
पंकेरुह बन्धुः कुमुद बंधुश्च	सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों
यत् दीप्तौ	जिस (श्रीचरण नख) के प्रकाश में
खद्योत पृथुकौ इव	जुगुनू के छोटे छोटे बच्चों के समान
भवतः	दीख पड़ते हैं। (ऐसा तो श्रीपद नखों का स्वरूपतः उत्कर्ष है ।) और
अशेषस्थानेषु	सम्पूर्ण अवस्था प्रत्येक दशा में ध्यान करने मात्र से
विशेषम् ध्रुव सुख(म्)	सब प्रकार से चिरस्थायी सुख (मोक्ष) को
विदधती	अनायास विधान करने (देने) वाली और
मंगलमयी	लोक में सब प्रकार का मंगल देनेवाली
विचित्र उर्वी पुत्री	सर्वथा निरुपम श्रीभूनन्दिनी जू के
पद रुह ततिः	पद नखों का विस्तृत प्रकाश
अशेष स्थानेषु	उभयविभूत्यात्मक सम्पूर्ण स्थानों में
(राजते) ।	शोभित हैं। ऐसा पद नखों का स्वरूपतः एवं फलतः उत्कर्ष है ।

र० प्र०—तेज निधान त्रिधाम प्रकाशक सूर्य शशी जुगुनू शिशु लागै ।
कबहूँ तेहि ध्यावत पावत सो अविनाशी अछय सुख मोदहिं पागै ॥
ऐसो परं महिनन्दिनी को नख जाको प्रकाश त्रिपाद लौं जागै ।
श्रीसिय मातु कुमार शिशू गुनि मोहिं द्रवैं मनतौ अनुरागै ॥४५॥

सुधा फेनच्छाया खचित सिचयेन प्रिय सखी,
शतैर्या पर्यंकान्तिकमुपसृता केशर धियम् ।
स्पृशन्ती स्मेरं ते बदनमवलोक्या नमति सा,
पदे रेखा राजी तव जयति राजीवनयने ॥ ४६ ॥

हे राजीव नयने !
तव पदे रेखा राजी
जयति
सुधाफेन च्छाया
खचित सिचयेन

हे शरद विकशित कंज लोचने श्रीसीताजी !
आपके पद में स्थित रेखाओं की पंक्ति ऐसी
शोभा दे रही है मानो
तुरंत के दुहे दूध के गाज की कान्ति से
चित्रित पद पोछनी (पावड़ी) के द्वारा प्रगट
हुई है ।

प्रिय सखी शतैः
पर्यंक अन्तिक उपसृता

आपकी सैकड़ों प्रिय सखियों द्वारा वह पाँवड़ी
पलंग के पास लाई गई और जब स्वच्छ
वस्त्रान्वित उस पावड़ी पर आपके पद पड़ते हैं तो
उनकी पीत रेखायें दर्पण में प्रति बिम्बित् पावड़ी
पर झलकने लगती हैं उस समय सखियां उस
प्रतिबिम्बिति रेखा राजी को

केशर धियम् स्पृशन्ती

केशर की बुद्धि से स्पर्श करती हैं अर्थात् उसमें
केशर के धब्बे का भ्रम हो जाता है । सखियों की
यह हालत देख कर आप हँसने लगती हैं तव

ते स्मेरम्
या (परमाशोभा)
अवलोक्य
आनमति ।

हँसते हुये आपके मुख की
जोपरम आह्लादकारिणी शोभा है
उस शोभा युक्त हँसते हुये मुख को देख कर
प्रत्येक सखी आपकी पद रेखा को नमस्कार
करती हैं । ऐसी विस्मयोत्पादिका रेखा राजी
शोभित है ।

र० प्र०—ताजे दुहे गउ दुग्ध के फेनलौं शोभित श्री-पर्यंक रसाला।
तेहि पै प्रतिबिम्बित पाँयन रेखनि जानै सखी रुचि केशरजाला॥
पोंछि सुस्वच्छ करै जब चाहति होत तबै सियहासउताला।
लज्जित ह्वै के नमैं तेहिकों सखि रेखनि ध्याइ कुमार निहाला॥४६॥

त्रपावश्या पश्यन्त्यजति ननुगीः कोशलपते—
रसूर्यम्पश्यायाः पदकिशलयस्नानसलिलम्।
भवद्योगे नद्योर्हिमवदहिमांशुप्रभवयो—
र्निलीना सेदानीमपि न पदवीं रोहति दृशोः॥४७॥

कोलशपतेः	सकेताधीश श्रीरामजी की राजमहिषी
असूर्यम्पश्यायाः	सदैव महलों में रहने के कारण जिसे कभी सूर्य नहीं देख सकता अथवा। जिसके तेज को सूर्य सह नहीं सकने के कारण उधर नहीं देखता
तव पद किशलय	आपके केशर चर्चित चरण कमल के
स्नान सलिलम् पश्यंतो	धोवन जल को देख कर
ननु	निश्चय कर के पश्यंती, मध्यमा और वैखरी जो क्रमशः नाभि, हृदय, कण्ठ में रहती है उसमें से हृदय में रहनेवाली
गीः	पश्यन्ती नाम की वाणी
त्रपाबश्याः	लज्जित होकर गुप्त रूप से
निलीना अजति	चली जाती है अर्थात् छिपी रहती है। और
द्वितीया गीः	दूसरी सरस्वती जो नदी रूपा है वह
हिमवत् अहिम अंशु प्रभयोः	हिमवान् की पुत्री गंगा और चंड किरण सूर्य पुत्री जमुना
नद्योः योगे	इन दोनों नदियों के संगम में
त्रपावश्याःनिलीना भवत्	लज्जावश छिप रही है।
सा इदानीम् अपि	वह आजत तक भी

दृशोः पदवीम्	किसी के नेत्र के सामने
न रोहति ।	नहीं आती अर्थात् कोई नहीं देखता ।

र० प्र०—जे पद दर्शन हेतु सदा रवि शम्भु सु साधन साजत हैं ।
केशर चर्चित ता पद धोवन देखि सरस्वति लाजति हैं ॥
ताते छिपी जल ह्वै रवि की तनया मधि गुप्तहिं छाजति हैं ।
सो पद दर्शन होइ कुमारहिं यांचि इहै जन गाजत हैं ॥

श्रीसीताजी के चरण प्रच्छालित जल का सौंदर्य सुगंध आदि ही सरस्वती के लज्जित होकर गुप्त हो जाने का एक मात्र कारण है ॥ ४७ ॥

स्फुटः स्यां चेद्याचेद्वितरणगुणं खं मणिगणः,
स्वयं स्वर्गोवर्गः कुलमपि सुपर्वक्षितिरुहाम् ।
कविर्वा कुर्वीत प्रतिममितरैर्मामितिमृशं,
विमृश्यादृश्यत्वं तव भजति गुल्फःकिमु रमे ॥४८॥

हे रमे !	हे रमण शीले सर्वान्तर्यामिनि स्वामिनि ! (आपका गुल्फ यह विचार कर छिपा रहता है कि)
चेत् अहम् स्फुटःस्याम्	यदि मैं प्रगट रहूँगा (तो मुझे देख कर)
स्वयं खं मणिगणः	स्वयं चिन्तामणियों का समूह तथा
स्वः गो वर्गः (तथा)	कामधेनुओं का झुण्ड और
सुपर्वक्षितिरुहाम् कुलम् अपि	कल्पवृक्षों का समूह भी
याचेत्	भिक्षुक रूपेण (मुझे ही ये लोग) याचेंगे
वा कविः इतरैः (सह)	अथवा कोई मूर्ख कवि ही दूसरों के साथ
माम् प्रतिमम् कुर्वीत	मेरी बराबरी करैगा (उपमा देगा ।)
इति भृशम् विमृश्य	इसी तरह से बहुत कुछ सोच विचार करके
तव गुल्फः	आपका गुल्फ (पादग्रंथि-टखना)
अदृश्यत्वं भजति किम् ?	छिपा हुआ रहता है क्या ?

र० प्र०–रामरमे ! तव गुल्फ अलक्ष्य प्रत्यक्ष न होत गुनौं यहि हेतू।
दानि पनो अति देखि न यांचै सुर-द्रु म-धेनु-मणी अति हेतू॥
तो हो वियोग सिया पद से इमि औरहु कीन्ह विचार सहेतू।
मूर्ख कुमार कवी कबहूँ न तुलैं केहुके सँग स्वारथ हेतू॥

सामुद्रिक शास्त्र का कहना है कि – (आ० रा० जन्म का० ६ । ३५)

समगुल्फौ स्वदेहेन स्निग्धावैश्वर्य सूचकौ ॥

तदनुसार श्रीजानकीजी के गुल्फ अदृश्य हैं। यहां कविप्रतिभा से कवि ने गुल्फ की अदृश्यता का हेतु उत्प्रेक्षा से वर्णन किया है ॥ ४८ ॥

मिलिदत्वं विन्दे यदि वसुमती नन्दिनि तदा,
त्वदीयांघ्रिच्छायार्पित सरसमाल्यस्य रजसा।
परिष्वक्तः शश्वद्गतिरहह यां यां दिशमिया—
दहं तस्यांतस्यांदिशितदनुगः स्यामनुयुगम् ॥४९॥

हे वसुमति नन्दिनि !	हे भूमितनये ! (अपने कर्मानुसार)
यदि अहम्मिलिन्दत्वं विन्दे	यदि मैं भ्रमररूप में जन्म लूँ
तदा त्वदीया अंघ्रिच्छाया—	तो (आपकी कृपासे) आपके चरणों के समीप में
अर्पित	(देवपत्नियों द्वारा) चढ़ाया गया जो
सरस माल्यस्य	रसीले फूलों के (पादभूषण रूप से) गजरे उसके
रजसा परिष्वक्तः	फूलों के पराग से मिला हुआ जो
शश्वत् गतिः	निरन्तर चलते रहने वाला पवन
याम् याम् दिशम् इयात्	जिस जिस दिशा को जाता है
अहह अहम्	हा ! मेरा भी कभी ऐसा भाग्य होगा कि मैं
अनुयुगम् तस्यां तस्यां दिशि	निरन्तर उसी दिशामें
तत् अनुगः स्याम् ।	उस पवन के पीछे चलने वाला होऊंगा।

र० प्र०–हे महिजे ! इ कुमार जो आपने कर्मन ते तन भौंर को पावै।
जो तुव पाद समर्पित पुष्पन माल पराग लै पौन सुहावै॥

जावै जहाँ जेहि ओर निरन्तर तौ यह हू तेहि पीछेहि धावै।
ऐसी बनाइये भाग्य सिये केहु भाँतिहुँ तौ पग मों हिय आवै ॥४६॥

पाटीरः स्यां कस्यामपि भुवि यदि क्षीरधि सुत—
स्तदा केचिद्धन्याः शुभपरशुभिःखण्डश इमम्।
सृजेयुर्मा धर्मावृति दृषदि मज्जेयुरपरे—
दधीरन्वाधीरं तव पद रुहे केपिकृतिनः ॥५०॥

यदि अहंकस्यां अपिभुवि	हे माता ! सीताजी ! यदि मैं किसीभी भूमि में
पटीरः स्याम् तदा	चन्दन का बृक्ष होता तो
केचित् धन्याः	कोई आपके चरणानुरागी धन्य (सज्जन) पुरुष
इयम् मा (माम्)	इस चन्दन बृक्ष रूप मुझको
शुभः परशुभिः खण्डशः	उत्तम (पुण्य रूपी) कुल्हाड़ी से टुकड़े टुकड़े
सृजेयुः। (पुनः) अपरे	बनाते। फिर अन्य सज्जन
धर्म आवृति	अनन्तकाल तक किये गये धर्मरूपी
दृषदि मज्जेयुः। (अनन्तर)	पत्थर-हुरसे पर घिसते और तब
के अपि कृतिनः मा (माम्)	कोई पुण्यात्मा चन्दन रूप मुझको
तव पदे दधीरन्।	आपके श्री चरणों में लेपकर देता
तदा अहम्	तब मैं अपने को
क्षीरधिः सुतः (मन्ये)	क्षीर समुद्र से निकला कल्पवृक्ष मान लेता—
वा धीरम् (मन्ये)।	अथवा कल्पतरु से भी बढ़ कर भाग्यशाली मान लेता।

र० प्र०—मातु कहूँ हम जो तरु होहिं कृपा करि चन्दन वृक्ष बनाइय।
धन्य कोऊ निज दासहिं भेजि सु पुण्य कुल्हाड़िन सों कटवाइय॥
धर्म किये बहुकालन पाहन पै केहुते फिरि मोहिं घिसाइये।
लै निज पाद लेपाइ उदार कुमार सुरद्रुम से सरसाइय॥ ५०॥

निलिम्पस्त्री हस्तांगुलि कलित शक्राश्म शकलो—
र्मिकाऽऽलोकस्तोकेतर मधुपसम्पर्क मधुरम्।

बिहारक्ष्मा हीरच्छविकुल सुधा पल्लव निभं,
मदीयं वैदेही चरण नलिनंद्वन्दमखिलम् ॥५१॥

निलिम्प स्त्री	(प्रणाम करती हुई) देवताओं की स्त्रियों के
हस्त अंगुलि कलित	हाथकी अँगुलियों से लगी हुई
शक्र अश्म शकल उर्मिका	इन्द्रनीलमणि के टुकड़ों के (पुंजीभूत) लहर के
आलोकः स्तोक इतर	प्रकाश ही वच्चों से भिन्न अर्थात् स्थूल बड़े बड़े
मधुप सम्पर्क मधुरम्	भौंरे हैं (जो उन भौंरों के समूहों के) संबंध से
	अति मनोहर हैं ।
(पुनः) विहारक्ष्मा	तथा क्रीड़ास्थलों की भूमि में जो
हीरच्छविकुल	मणियां जड़ी हैं उनकी जो प्रभासमूह फैल
	रही है वही (रत्नप्रभा)
सुधा पल्वल निभम्	अमृत के तड़ाग के समान है (उसमें बिकसित)
वैदेही द्वन्दम्	माता श्री जानकीजी के दोनों
चरणनलिनम्	चरण कमल ही
मदीयम् अखिलम् स्तः ।	मेरे सर्वस्व हैं अर्थात् लोक परलोक का समस्त
	सुख जगज्जननी श्रीजानकी माता के दोनों चरण-
	कमलों के आधीन है, और सभी आश्रय व्यर्थ हैं।

र० प्र०—सुरनारि निरन्तर सेवत पादहिं ता अँगुरीनि जड़ी मणि जो है।
बहु भाँतिन फैलेहु तासु प्रकाश मिलिन्दनि पाँति मनो मनमोहै ॥
मणिभूरि जड़ी सिय क्रीड़ा थली तिसु फैली प्रभा उपमा इमि सोहै।
अमृत के सरमाहिं खिले सिय के पद कंज कुमार भलो है ॥५१॥

यदुन्मेषे भूषास्त्यजति गिरिजाजानिरुडुपः,
कलंकं पर्यंकं नलिननयनः पत्रमलिनः ।
समं जीयात्संजीवयतु जगताम्मातुरुषसि—
व्रजन्त्याः मंजीरध्वनिरशरणं जीव हरिणम् ॥५२॥

उषसि व्रजन्त्याः — प्रातः काल शयनागार से निकलकर मंगल भवनादि में विचरती हुई—

जगताम्मातुः मंजीरध्वनिः (मे शरणःस्यात्) — जगज्जननी श्रीसीताजी की नूपुर ध्वनि मेरी रक्षिका है। वह नूपुर शब्द कैसा है कि

यत् उन्मेषे — जिस शब्द के उदय होने से अर्थात् जिसको सुनकर

गिरिजाजानिः — शिवजी तो गान के वशीभूत होने से चंचल जान कर अपने

भूषाः त्यजति — भूषण सर्पों को छोड़ देते हैं अर्थात् नहीं सँभाल सकते

(तथा) उडुपः — और चन्द्रमा भी (गान के वशीभूत होने से चंचल जान कर)

कलंकं त्यजति
नलिननयनः
पर्यंकम् त्यजति । — अंकस्थित अपने मृग को छोड़ देते हैं और इसी कारण कमलनयन श्रीमन्नारायणजी भी शेषशय्या छोड़ देते हैं क्योंकि उस ध्वनि से शेष मोहित हो फणों को चंचल किये देते हैं सँभाले से नहीं सँभलते और

अनिलः पत्रम् ज्यजति । — पवन भी न सँभाल सकने के कारण अपने वाहन मृग को छोड़ देते हैं

(सा) मंजीरध्वनिः
सदम् जीयात् (अथ च) — नूपुर की वही परम मनोहर ध्वनि सदा विजय को प्राप्त हो और

अशरणम्
जीवहरिणम्
संजीवयतु । — निराश्रित (जन्म मरण प्रवाह में भटकते हुये) जीवरूपी हरिण को अच्छी प्रकार जिलाने वाली अर्थात् पोषक मुक्ति प्रद होवे ॥

र० प्र०—प्रातः मातः सीय चलैं जो उठै धुनि नूपुर मों रखवारैं।
जो सुनि शम्भुहिं त्यागैं अहीगन अंक न चन्द्र मृगाहिं सँवारैं॥

मोहित शेष किये फण चंचल कै हरि यत्न सकैं न सँभारैं।
चक्कृत पौन तजैं मृगवाहन जै धुनि दास कुमार उधारैं॥

श्रीसीताजी के पग-नूपुरों की ध्वनि का वर्णन करते हुये यह बतलाया गया है कि सर्प और मृग गान प्रेमी हैं इसीलिये नूपुर की स्वर लहरी को सुन कर सन्निकट से सुनने के लिये चंचल हो जाते हैं यहाँ तक कि वे अपने अपने मालिकों की सँभाल में नहीं आ पाते ॥ ५२ ॥

भ्रमन्त्या त्वच्चिन्तामणिगृहसमन्ताद्यदुदये,
बिपंची स्वंचोलम्प्रविशति विरंचेर्मृगदृशः।
शुकोऽप्यस्याः पश्यत्यभिमुखमहो पंजर मुखं,
जगन्मातः प्रातः स जयति भवन्नूपुर रवः॥ ५३॥

हे मातः ! यत् उदये	हे माताजी ! जिस आपके नूपुर स्वर के उदय में अर्थात् उस स्वर को सुन कर जो —
त्वत् चिन्तामणि गृह —	आपके मणि महल में (आपकी आराधना के लिये)
समन्तात् भ्रमन्त्याः	उस रत्न महल की प्रदक्षिणा करती हुई चारो ओर घूमती हैं
विरञ्चेः मृगदृशः विपञ्ची स्वम् चोलम् प्रविशति	जो ब्रह्मा की पत्नी मृगनैनी सरस्वतीजी उनकी वीणा (अपनी पराजय देख कर लजासे मुँह छिपाकर) अपने वस्त्र में घुस जाती है अर्थात् सरस्वतीजी अपनी वीणा का तार ढीला कर के उसे उसके आवरण वस्त्र (खोल) में बंद कर देती हैं।
(तथा) अस्याः	और हाथ पर बैठा हुआ इन्ही सरस्वतीजी का पालतू
शुकः अपि अभिमुखम्	लीला शुक भी लज्जित होकर सामने रखे हुये

पञ्जरमुखम् पश्यति	पिंजड़े का मुँह देखता है अर्थात् पिंजड़े में मुँह छिपा लेता है।
जगत् मातः भवत् प्रातः स नूपुरवः जयति।	हे जगज्जननी प्रातःकालिक आपके पद नूपुर का वह शब्द विजयी हो रहा है

र० प्र०—भौन भ्रमैं विधि भामिनि-वीण लजी सुनि के त व नूपुर की धुनि।
मुँह मूदि छिपी तेहि लाजन बस्त्र, गिरा कर जो शुक पालित ज्यों मुनि॥
लज्जित देखत कागर आपने में भजि कै मुँह चोंरि रहै गुनि।
जय जगमातु सियापग नूपुर प्रात कुमारहु मुक्ति लहै सुनि॥

बावनवें श्लोक में वर्णित नूपुर शब्द को ही यहां पुनः आक्षेपालंकार से वर्णन किया गया है॥ ५३॥

यदप्याशाधीशास्तव दशलभन्तेऽङ्घ्रिज शिखाः,
शनै र्नूनं लूनास्तदपि वरुणस्तत्र करुणः।
दिशि स्वस्यां यस्तां प्रमुदित समस्तां प्रकटय—
त्यपूर्वेन्दुं सर्वेऽप्यभिदधति यां निर्वृतिमयीम्॥५४॥

आशाधीशाः दश यत् तव दश अपि अंघ्रिज शिखाः	ईशान दिशा के स्वामी दश रुद्र गण हैं, वे आपके जिन दशों ही चरण नख को धारण किये हैं
शनैः लूना तत् अपि—	सखियों द्वारा पुनः काटे गये उन्हीं पद नखों को लेकर
करुणः वरुणः तत्रस्वस्याम् दिशि प्रकटयति	अति कृपालु वरुणदेव अपने आधीन की दिशा अर्थात् पश्चिम में प्रगट करते हैं।
यः (नखः) याम् प्रमुदित समस्ताम्	जो वह नख अपने को जिस वरुण की विकसित सम्पूर्ण पश्चिम दिशा को प्रकाशित करने के लिये
अपूर्व इन्दुम् प्रकटयति	अपूर्व चन्द्ररूप से प्रगट करता है उदय करता है—

सर्वैरपि ताम्
निर्वृतिमयीम् अभिदधति ।

इसी से सब लोग उस पश्चिम दिशा को आनन्द मयी दिशा कहते हैं अर्थात् शुक्लपक्ष की द्वितीया में पश्चिम दिशा में उदित नखेन्दु को प्रणाम करके आनन्द मंगल पाते हैं।

ई० प्र०—दशरुद्र इशान दिगीश सियापद के नख लै निजभालन धारे।
फेरि जो काटि सखीन पँवारत कै करुणा वरुणौ धरि प्यारे॥
सोई उगैं दिशि पश्चिम में द्वितिया शशि के मिस पाख उजारे।
ताते सबै प्रणमैं तेहि को करि ध्यान 'कुमार' अधार विचारे॥

पहले ग्यारहवें श्लोक में एक बार के कटे हुए दशो पद नखों को दश रुद्रों का धारण कहना कह आये हैं. अब दूसरी बार पुन जब कभी नख काटे गये तब उसे वरुणदेव का लेना इस श्लोक में 'अर्थापत्ति' रूप से कह कर वरुण की सौजन्यता कही गई कि जैसे कोई बालक अपनी माता से जब कुछ अपूर्व वस्तु पाता है तो उसे बड़े आह्लाद के साथ सब को दिखाता फिरता है। उसीतरह श्रीवरुणजी श्रीसीताजी महाराणी के पद नखाग्र को जब भाग्यवश पागये तो उस पद नखाग्र को परम अद्भुत पदार्थ जान कर प्रत्येक मास में सबको चन्द्रमा के रूप में दिखाया करते हैं॥ ५४॥

मणीनेकैकस्यां दशदश फणीशो वहति यत्,
फणायां विच्छायी कृत नव दिनेशानवनिजे!।
नखानां ध्यानाय प्रति फणमयं तत्प्रतिकृतीः,
प्रतीमः सप्रेमाकलयत इमास्त्वच्चरणयोः॥५५॥

हे अवनिजे! फणी ईशः
यत् एक एकस्याम्
नव दिनेशान् विच्छायीकृत

हे भूनन्दिनीजी! नागों के राजा शेषजी
जो अपने एक एक (प्रत्येक) फणों में
प्रातः कालिक सूर्य की प्रभाओं को मलिन करने वाले

दश दश मणीन् वहति
अयम् सप्रेमा त्वत् चरणयोः

दश दश मणियों को धारण करते हैं
यह पद प्रेमी शेषजी आपके चरणों के

नखानाम् ध्यानाय	नखों के ध्यान करने के लिये
प्रति फणम्	अपने प्रत्येक फण में
तत् प्रतिकृतीः	उस (नख) की मूर्ति को मणि रूप से
कल्पयते इति प्रतीमः ।	धारण करते हैं ऐसा हम निश्चय जानते हैं ।

र० प्र०—हे महिनन्दिनि ! जो अहिनाथ प्रत्येक फणै मणि दश् दश् धारे ।
जाकी प्रभा प्रगटी दशहू दिशि प्रातः सूर्य प्रभाहिं बिसारे ॥
सो अहिनाथ लखे प्रभुता सिय ! तो पद के नख ध्यान सँवारे ।
है इमि जानत भाब 'कुमार' महा महिमान्वित ये नख प्यारे ॥

इस श्लोक में श्रीसीताजी के चरण नखों की प्रभा के ध्यान फलका स्पष्टीकरण किंचित् रूप में उत्पेक्षा द्वारा की गई है ॥५५॥

तपः स्फूजन्नूर्जस्वल नखकुलं तेऽङ्घ्रिकमलं,
मुनिः कश्चित्सच्चिन्मयि शिरसि दध्यौ प्रतिपलम् ।
ए ष श्रीशेषः शिरसि शिरसि त्वच्चरणयोः,
प्रपेदे सादृश्यं दश दश मणीन् बिभ्रति शुभान् ॥५६॥

हे सत् चित् मयि !	हे अखण्ड ज्ञानानन्दमयि सच्चिदानन्द स्वरूपे श्रीसीते !
कश्चित् मुनिः	किसी आपके अनन्य दास मुनि ने
तपः स्फूर्जन् ऊर्जस्वलम्	तप (कांति) से प्रकाशमय अत्यन्त तेजः पुंज श्रेष्ठ
नखकुलम् ते अंघ्रिकमलम्	नखसमूह युक्त आपके कमलवत् श्रीचरणों को
प्रतिपलम् शिरसि	प्रत्येक क्षण (हरदम) शिरपर
दध्यौ ।	धारण किया अर्थात् अहर्निशि ध्यान करता रहा ।
स एष श्रीशेषः	वही प्रेमी मुनि श्रीशेष रूप से इस कल्प में अवतरित हुये हैं
त्वत् चरणयोः सादृश्यम्	इसी से वे आपके चरणों की बराबरी को
प्रपेदे	प्राप्त हुये हैं । अर्थात् जैसे आपके पद में दश नख है वैसे

शिरसि शिरसि	वे भी अपने प्रत्येक शिर में
दश दश शुभान्	दश दश परमोत्तम दिव्य
मणीन् बिभ्रत् ।	मणियों को धारण किये हैं ।

र० प्र०—आनँद ज्ञान अखंड स्वरूपिनि कोउ मुनिदास अनन्य तुम्हारा ।
तप तेज समूहन कान्तित तो नख ताहिसदा शिर ऊपर धारा ॥
जन्म अनेकन ध्यान कियो नित ताते भयो सोइ शेष उदारा ।
प्रतिमस्तक में तेहि के फल रूप महामणि दश दश कान्ति हजारा ॥

"अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो यांति परां गतिम् ।" इस गीतोक्त सिद्धान्तानुसार शेष के प्रत्येक फणों में दश दश मणियों के होने का कारण उनका जन्मान्तर में श्रीसीताजी महारानी के श्रीचरणों में अतिशय प्रेम होना ही है ॥५६॥

विवाहे वैदेह्याः पदरुह महः पाटल कलाः,
कृशानौ संक्रान्तास्तदवधिः किलायं दशकलः ।
प्रविश्यामुंक्षामच्छविरपि रविर्धाम लभते,
नवीनं दीनेन्दुः खमिदमनुसृत्यप्रसरति ॥५७॥

वैदेह्याः विवाहे	श्रीजानकीजी के विवाह के समय उनके
पदरुह पाटलकला महः	चरणनखोंके रक्तश्वेत मिश्रित (गुलाबी) रंगके
कृशानौ संक्रांताः	प्रकाश की जो छाया अग्नि में पड़ गई थी वही
तत् अवधिः अयम्	छाया पाकर उसी समय से यह (अग्नि)
दश कलः किल	दशकलावाले प्रसिद्ध हुये अर्थात् दश पद नखोंके प्रकाशकी गुलाबी छाया अग्नि की दश कलायें हुईं ।
क्षामच्छविः रविःअपि	अस्तकाल में मलिन (क्षीण) प्रभाववाले सूर्यभी
*अमुम् अग्निम् प्रविश्य	इसी अग्नि में प्रवेश करके नित्य
नवीनम् धाम लभते ।	नवीन तेज प्राप्त करते हैं; और अग्नि में प्रवेश पाने के कारण इस लाभ से वंचित होने से

* आदित्यो वा अस्तंयत्राग्निमनु प्रविशति । (इति श्रुति संग्रह उद्धता श्रुतिः)

दीन इन्दुः अनुसृत्य
इदम् खम् प्रसरति ।

दीन होकर चन्द्रमा सूर्यका अनुसरण करके
(रात्रि में) इस आकाश में दोड़ते फिरते हैं !

र० प्र०—व्याह समै महिनन्दिनि के पगकी नख कान्ति जो अग्नि परी ।
ताते कलादश पावक में प्रगटी सो स्वधापति शीश धरी ॥
क्षीण प्रभारवि अस्तसमै नित पावक पैठि नवीन करी ।
सो नहिं पावत चन्द्रमलीन कुमार भ्रमै नभ सर्ब घरी ॥

सूर्य का प्रकाश एवं तन्त्र शास्त्र प्रसिद्ध अग्नि की दश कलायें श्रीसीताजी के चरण नखों के प्रभाव की द्योतिका हैं। अग्नि की दशकलायें ये हैं—"धूम्रा च नील रक्ता च कपिला विस्फुलिंगिनी। ज्वालानिष्पत्तिका चैव हव्य वाहनिका तथा। कव्य वाहनिका रौद्री संहारिण्यः कलादश ॥ (वशिष्ठ संहिता, ॥५७॥

तृणं मन्यश्चिन्तामणिमपि मुनिर्यत् कलयति,
प्रियं प्राणात् पृथिवी दुहितरिदमंघ्रे स्तव नखम् ।
कथं तन्माणिक्यप्रतिममितिशक्यं कथायितुं,
किमारोप्यस्थानी द्युमणिरपियस्यैक किरणे॥५८॥

हे पृथिवी दुहितः !
चिन्तामणिम् अपि तृणम्
मन्यः मुनिः

हे महिनन्दिनी सीताजी !
सर्व कामनापूरक चिंतामणि को भी तृणवत्
तुच्छ माननेवाले परम वैराग्यवान् जो आपके
चरण का ध्यान करनेवाले मुनि हैं वे

यत् तव अघ्रेः इदं नखम्
प्राणात् अपि प्रियम् कलयति
तत् माणिक्यप्रतिमम् कथयितुम्
इति कथम् शक्यम् । यस्य
एक किरणे द्युमणिः अपि
आरोप्य स्थानी भवति

जब आपके श्रीचरणों के इन नखों को अपने
प्राण से भी अधिक प्रिय जानते हैं । तब भला
उन नखों को चिन्तामणि समान कहना
यह कैसे उचित होगा ! अर्थात् नहीं । और जिस
नखकी एक किरण के सामने आकाश के मणि
सूर्य भी—सूर्य में अपना कुछ भी तेज नहीं है ऐसा

मालूम पड़ता है अर्थात् उनका तेज इन्हीं श्री नखों से है ।*

तत् द्युमणि प्रतिमम् कथयितुम् शक्यम् किम् । — तब भला इन नखों को सूर्य के समान कहा जा सकता है क्या ? अर्थात् नहीं ।

र० प्र०—हे महिनन्दिनि तो पद ध्यायक जे मुनिज्ञाननिधान महाना ।
तृण तुल्य तजे सुरचिन्तमणीन पै तो नख प्राण समान सुजाना ॥
कैसे भला यह योग्य जँचै नख राशि भनै सुररत्न समाना ।
सूर्यहु ना सरि पावै कबौं तुलना करि होत कुमार अयाना ॥

पदनखों में चिन्तामणि से भी अधिक मुमुक्षुओं का प्रेम और कैमुत्य न्याय से सूर्य से भी अधिक प्रकाश कहना व्यतिरेक है अतः इस श्लोक में पदनखों की अनुपमता व्यतिरेक अलंकार से कही गई है ॥ ५८ ॥

स संकोचाः सिचन्त्यमर ललना कुंकुम रसै—
र्नमच्छम्भुं संभावयति च कुसुम्भाक्त सिचयैः ।
पिधत्ते या पिष्टातक पटलतो दिङ्मुखमियं,
श्रियं दिस्यात्लक्ष्मो चरणनख लौहित्य लहरी ॥५९॥

चरण नख लौहित्य लहरी लक्ष्मी । — श्रीसीताजी के चरण कमल की लालिमा की सौंदर्य रूप तरंग ही अपूर्व लक्ष्मी है ।
इयम् श्रियम् दिशति — यह सौंदर्य लक्ष्मी हम सब उपासकों की श्री को देवै ।
(यां सौंदर्य लहरीं लक्ष्मीम्) — जिस पद नख लाल लहरी लक्ष्मी को पूजा के लिये
अमर ललना ससंकोचाः — देवताओं की स्त्रियाँ बड़े संकोच के साथ

---

* "भीषोदेति सूर्यः (तै० उ० २।८।१)" "यस्यभासासर्व मिदं विभाति' लोकपहोहिं विलोकत तोरे ।' 'जाकी कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितवन० ।'
(मानस)

कुंकुम रसैः सिञ्चन्ति ।	केशर के रस (सार) से धोतीं हैं अर्थात् नख लहरी की कान्ति को देखकर देवपत्नियों को संकोच होता है कि इनके सामने केशर क्या चीज है ? तुच्छ है ।
(याच) नमत् शम्भुम्	और जो लाली नमस्कार करते हुये शिवजी को
कुसुम्भ आक्त सिचयैः	केशर में भीगे वस्त्रोंवाले अर्थात् लाल रंग का
सम्भावयि । या (च)	बना देती है । और जो सन्ध्या सबेरे
दिक् मुखम् पिष्टातक —	सब दिशाओं को गुलाल की
पटलतः पिधत्ते	लालिमा से आच्छादित कर देती है
इयम् नः श्रियम् दिशति ।	यही लाली हम सबको आनन्द मंगल देती है ।

र० प्र०—नख लालिमा की लहरी अति अद्भुत देवै हमैं शुभ श्री सुखकारी।
सुरनारि सँकोचन धोवत सो नख केशर के जलसों रुचि भारी॥
पद लोटत शम्भु सुवस्त्रभिजाइ कुमार करै सोइ लाली सुखारी।
साँझ सबेरे अकाश प्रकाशि अनन्दित मंगल सृष्टि हमारी॥५६॥

जैसे इस श्लोक में पद नख लालिमा का उत्कर्ष सूचित किता गया है उसी तरह पद तल की लालिमा पर संन्यासि शिरोमणि श्रीदेवतीर्थ स्वामी (काष्ठ जिह्व) जी महाराज का कितना सुन्दर पद है —

सिय जू के अरुणारे दोउ तरवा ।
मानहु अनुरागन के घरवा ॥
का गुलाब का कमल कँटीलो का बड़ लाल अनरवा ।
का कुसुम्भ जल बुन्द परतही विगरत रंग निचोरवा ॥
का मखमल का सरसो कलँगी का मालती पतरवा ।
इनकी कोमलता के आगे का कपोल वट परवा ॥
ऊरध पदुम कलपतरु अंकुश रेखन को उँजिअरवा ।
इनके धोवत डरत देवता जनि चुइपरै अँतरवा ।
इनसे लगन नहीं तो बिरथा दण्ड कमण्डल करवा ॥

(श्रीजानकी विन्दु १८)

विरंच्याद्यैरर्चे तव चरण योरर्चन कृते ;
शुभै पुष्पै शोभाजुषि मरकाकाश चषके ।
चकास्तीदं चन्द्रोज्वलनमखिलामोद जनकं,
ससंकोचं नोचेत् कथममुकयोः स्पर्द्धि कमलम् ॥६०॥

हे विरंचि आद्यैः अर्चे !	हे ब्रह्मादि देवताओं से पूजित श्रीसीताजो !
तव चरणयोः अर्चन कृते	आपके चरणों की पूजा करने के लिये देवताओं ने
शुभैः पुष्पैः	सुन्दर नक्षत्रों (तारागणों) रूपी पुष्पों से सजाया हुआ
शोभा जुषि मरक—	अत्यन्त शोभित (मानो) नीलमणि का बना हुआ
आकाश चषके	आकाश रूप थाल में
अखिल आमोद जनकम्	सबको आनन्द (रूपी सुगन्ध) देनेवाले
इदम् चन्द्रः*	(चन्द्रमा के समान जो) यह कपूर है—इसको
ज्वलनम् चकास्ति	जला कर (आरती करते हुये देवगण शोभित) हैं ।†
नोचेत्	यह चन्द्रमा नहीं है, यदि चन्द्रमा होता तो
अमुकयोः (तव चरणयोः) स्पर्द्धि- कमलं ससंकोचं कथं (कुर्यात्) ।	आपके श्रीचरणों के मित्रभूत कमल को संकोचयुक्त क्यों करता ? ।

र० प्र०—नभ मरकत थार सजे उडुपुष्प सिया पद पूजन शिव विधिलाये।
सबको सुखदायक वारि कपूर मनौ यह चन्द्र समग्र सुहाये ॥

---

* वेणु सारस्तु कर्पूरो चन्द्रभस्म हिमाह्वयम् ॥ (इति त्रिकाण्डशेषः)
विधुः शशांके कर्पूरे हृषीकेशे च राक्षसे ॥ (इति विश्वः)
चन्द्रः कर्पूर काम्पिल्ल सुधांशुस्वर्ण चरुषु ॥ (इति मेदिनी)

† यहाँ आकाश को थाल और तारागणों को पुष्प कहा परन्तु प्रत्यक्ष में चन्द्रमा को कर्पूर नहीं कहा, केवल कर्पूर मात्र ही कहा इसका कारण ग्रन्थकार ने स्वयं ही "नोचेत्" कह कर बतलाया है ।

चन्द्र कपूर कहे अति दूषण श्री पद पद्म विरोध कहाये।
सुर पूजित श्रीसिय पाद सदा जेहि आस कुमार निचिन्त रहाये॥

इस श्लोक में चरणों के ऐश्वर्य का वर्णन 'हेत्वपन्हुति-अलंकार' से इसतरह किया गया है कि चन्द्रमा कमल का द्रोही है इससे चन्द्रमा श्री जू के सामने नहीं जा सकता क्योंकि शत्रु का मित्र भी शत्रु है अतः नभ में नक्षत्रों में प्रकाशित यह चन्द्रमा नहीं है किंतु श्रीचरण नख की आरती के लिये प्रज्वलित कर्पूर है। यही अपन्हुति है॥ ६०॥

कुरुक्षेत्रं क्षेत्रं कुरु चरणयोः सच्चरणायोः,
सरस्वत्या कान्त्याङ्गुलि वलय शक्रोपल रुचा।
समुद्यत्कालिन्द्या जनजननि! वृन्दावनमिदं,
नखाग्र प्रत्यग्रद्युति गगनधुन्या सुखवनम्॥६१॥

हे जनजननि!	हे संपूर्ण लोकों की माता श्रीसीताजी!
सत् चरणयोः चरणयोः	उत्तम गति से विचरने वाले अपने श्री चरणों को रखकर
क्षेत्रं अंगुलिकांत्या सरस्वत्या	मेरे हृदय क्षेत्र को पदांगुलियों की लालप्रभा रूप सरस्वती से
कुरुक्षेत्रं कुरु	कुरुक्षेत्र बनाइये। क्योंकि जिस स्थान पर आपके चरण पड़ते हैं उस स्थान पर पद लालिमा की लाल प्रभा फैल जाती है वही कुरुक्षेत्र में प्रवाहित लाल धारा वाली सरस्वती नदी है।
वलय	अँगुलियों में जो वलय (छल्ले) हैं उन पर जो
शक्रोपलरुचा	इन्द्र नीलमणि (नीलम) जड़े हुये हैं उनकी दीप्ति रूपी
समुद्यत कालिन्द्या	उमंग से लहर मारती हुई जमुनाजी के द्वारा
इदम् वृन्दावनं कुरु	इस मेरे हृदय को वृन्दावन बनाइये। और

नखाग्र प्रत्यग्रद्युति	पदनख के अग्रभाग के प्रकाशित द्युतिरूपी
गगनधुन्या इदम्	आकाश नदी-गंगाजी के द्वारा इस मेरे हृदय को
सुख वनम् कुरु ।	आनन्दवन—काशी बनाइये ।

र० प्र०—मातु पदांगुलि लाल प्रभा वगराइ सुस्वच्छ सरस्वति धारा।
कीजिय मो हिय को कुरुखेत सुन्यासित कै पद न्यास पसारा॥
मघवामणि नूपुर कान्ति कालिन्दजा यों कै विंदावन चित्त उदारा
नख अग्र प्रकाश अकाश धुनी धरि काशी हृदय कुरु सीय! कुमारा

इस श्लोक में बताया गया है कि श्रीसीताजी जहाँ जहाँ पाँव रखती हैं वहाँ वहाँ की भूमि एक साथ ही कुरुक्षेत्र, वृन्दावन और काशीवत् बन जाती है भाव यह कि जहाँ जहाँ आपके श्री चरण जिस भूमि पर पड़ते हैं वहां पर कोटि कोटि कुरुक्षेत्र वृन्दावन और काशी निवछावरि है। अर्थात् शास्त्रदृष्टि से तो श्रीजू के चरण तीर्थों के तीर्थ हैं ही लोक दृष्टि से भी वे महान् तीर्थ हैं॥ ६१॥

दरोन्मीलत् कल्पद्रुम कुसुम सौरभ्यलहरी,
धुरीणैर्धम्मिल्लैः सुर युवतिभिर्धूत रजसी।
त्रिलोकीनिश्शोकी करण निपुणे रामरमणी;
पदत्राणे प्राणेशितुरिवरतेर्नौमिशरधी॥६२॥

दर उन्मीलित	किंचित् विकसित
कल्पद्रुम कुसुम सौरभ्य लहरी	कल्पवृक्ष के पुष्पों की सुगन्धि की अतिशयता
धुरीणैः धाम्मिलैः	को धारण करके अपने केशों (चोटियों) द्वारा
सुर युवतिभिः धूत रजसी	देव पत्नियाँ जिसकी धूल झाड़ती पोंछती हैं
त्रिलोकी निश्शोकी करणनिपुणे	जो तीनों लोक को शोकरहित कर देने में परम प्रवीण हैं
रतेः प्राण ईशितुः शरधीइव	और जो रति के प्राणनाथ—काम के तरकश के समान है।
रामरमणी पादत्राणे	श्रीसीताजू की ऐसी प्रभावशालिनी दोनो जूतियों को

(अहम्) नौमि । मैं नमस्कार करता हूँ ।

१० प्र०–देवबधू निज वेणिन सों नित पोंछति हैं जेहिकौं रंगरागी ।
जो त्रयलोक विशोक करै जनु तूण अनंग कसे वड़ भागी ॥
रामप्रिया सियकी पगपानहीं ध्यान धरे अघनाशन लागी ।
ऐसी महा महिमा मयि जूतिन्ह नित्य कुमार नमै रुचिपागी ॥

यह श्लोक प्रभावसूचक नमस्कारात्मक मंगलाचरण के रूपमें प्रयुक्त हो सकता है । जैसे यहाँ श्रीजानकीजी की जूतियों का वर्णन है इसी तरह भावुक हृदय श्रीमनहर मस्ताना ने श्रीरामजी की जूतियों का वर्णन किया है—

जूती पहिरे फिरत हैं रामलला पद कंज ।
मखमली मुलायम गुलगुली मुनि मन मोहन मंजु ॥
मुनिमन मोहन मंजु कंज मधुरी रस चूती ।
जरतारी छवि अयन मयन सुखमा परसूती ॥
कह 'मनहर' दुख हरन परन शरनागत दूती ।
क्या ललित रंगीली काम रामरसिया की जूती ॥
(२) जूती रतनन जगमगे जड़े हैं बूटे बेल ।
चन्द्र चमक दामिनि दमक तरहैं अँतर फुलेल ॥
तर हैं अँतर फुलेल सियनि रेशम मजबूती ।
छवि छावन संयोग भोग मन भावन भूती ॥
कह 'मन हर मस्तान' ज्ञान कविजन मन कूती ।
ध्यावत चारौ धाम राम रसिया की जूती ॥ ६२ ॥

स्फुरामि द्युस्वामी प्रमुख हृदयान्तर्ध्रुवमहं,
मदन्तः सीतायाः स्फुरति वसुमत्याः पदमिदम् ।
अमुष्यान्तः किं किं न सुखमिति किंकिण्यनुरणत्,
कृतैरंघ्रित्राणं भणति धरणीनन्दिनि ! तव ॥६३॥

हे धरणीनन्दिनि ! (श्रीसीताजी की पनहियाँ कहती हैं कि) हे

भूमिजे ! (मेरे सहित आपके चरणों का ध्यान ब्रह्माशिवादि करते हैं इस लिये)

अहम् द्युस्वामी प्रमुख— मैं तप सत्य पर्यन्त समस्त स्वर्गाधिप शिवेन्द्र ब्रह्मादि के

हृदय अंतः स्फुरामि । हृदय के भीतर प्रकाश करती हूँ । और

मत् अन्तः वसुमत्याः मेरे भीतर श्रीरामप्राणधनेश्वरी

सीतायाः इदं पदं स्फुरति श्रीसीतामहाराणी के ये पदकमल प्रकाश करते हैं ।

अमुष्य अन्तः किम् किम् सुखम् न इन चरणों के भीतर क्या क्या (कौन कौन) सुख नहीं हैं अर्थात् ये चरण सभी सुख के देने वाले हैं

इति तव अंघ्रित्राणं किंकिणी इस तरह आपकी पनहियाँ अपने में लगे घूंघुरों के

अनुरणत् कृतैः भवति । सूक्ष्म शब्दों द्वारा बार बार कह रहीं हैं ॥

र० प्र०—विधि शंकर नारद ध्यान धरैं महिनन्दिनि के पद त्राणनि केरो ।
जाते लहैं हिय दिव्य प्रकाश विकाशित ना तम जावत नेरो ॥
रामप्रिया पदत्राण धरे उरमाहिं कुमारहु के करि डेरो ।
दिव्य अनन्त गुणानि भरीं नित किं किं किं कहि किंकिणि टेरो ॥

सम्राज्ञियों के पद त्राणों में प्रायः किंकिणी (छोटी २ घूंघुरैं) लगी रहती थी । यहाँ पदत्राण में लगी क्षुद्र घंटिकाओं की ध्वनि का वर्णन है ॥ ६३ ॥

वनंम्लानी कर्तुं विमृशति हिमानी वनरुहा—
मियं सेना तेषां खलु मधुलिहामम्बुजधिया ।
झटित्यावां धावेदिति किमु पदाभ्यां तवधृते,
पदावन्यावन्यादृश मणिधरे प्रेयसिहरेः ॥ ६४ ॥

हे हरेः प्रेयसि ! हे श्रीरामजी की प्राणप्रिये !

हे अन्यादृश मणिधरे हे विचित्र शक्तिवाले मणियों को धारण करने-वाली

इयम् हिमानी वनरुहाम् वनम् म्लानी कर्तुं विमृशति ।	यह पाले का समूह कमलों के वन को मुरझा देने का विचार करता है (इसलिये कमलों में रहने वाले)
तेषां मधुलिहाम् सेना अम्बुजधियाम् झटिति खलु आवाम् धावेत् किमु इति तव पदाभ्याम् पद अवन्यौ धृते ।	उन मकरन्दास्वादी भौंरों की सेना–पंक्ति (हम चरणों को) कमल जानकर शीघ्रता से अवश्य हम दोनो के ऊपर दौड़ेगी क्या यही जानकर (इसीलिये) आपके चरणों ने पद त्राणों (चरण रक्षकों) को धारण कर लिया है ।

र० प्र०–रामप्रिये ! डरि भौरन सों जनु तो पद पंकज यों जिय ठानी ।
पाला परे मुरझावैं जबै मधुमत्त निवास तबै विनशानी ॥
धाइ धरैं पद पद्म-मरन्द सु स्वादित भीर मिलिन्द भुलानी ।
चाहत त्राण जबै पदत्राणहिं पैठि कुमार सुरक्षित मानी ॥

इस श्लोक में श्रीसीताजी के पदत्राण पहिनने की यह उत्प्रेक्षा की गई है कि भ्रमर समूह उन्हें कमल जानकर व्यथित न करैं । कुछ साँप बिच्छुओं किंवा कुश कंटक कंकड़ आदि के डर से नहीं । सर्पादि तो विचित्र मणियों के प्रभाव से महल में किंवा आपके समीप जा ही नहीं सकते इसीसे 'अन्यादृश मणिधरे' संबोधन किया है । 'नृप मंदिर सुन्दर सब भांती" में कुश कंटक कंकड़ादि कहां ॥६४॥

प्रणामं कुर्वाणः पद कमलयोस्ते विमलयो—
स्त्रयाणां त्राणाय प्रभवति मनोजाम्ब जगताम् ।
प्रवीणे तत्त्राणे नमयति शिरो यः कृति वरः,
स कां सिद्धिं विन्द्यादिह बहु तराँ मुह्यति मनः ॥६५॥

हेमनोजाम्ब !	हे कामावतार लवजी की माता
ते विमलयोः पदकमलयोः	आपके निर्मल चरण कमलों को

प्रणामं कुर्वाणः त्रयाणां जगताम् प्रणाम करने वाला दास तीनों लोकों की
त्राणाय प्रभवति । रक्षा करने में समर्थ होता है ।
यः कृतिवरः प्रवीणः (स्वः) जो पुण्यात्माओं में चतुर पुरुष अपना
शिरः तत् त्राणे नमयति सः शीश उन पादत्राणों में झुकाता है वह पुरुष
काम् सिद्धिं विंद्यात् इह किस सिद्धि के प्राप्त करेगा इस सम्बन्ध में
मत् मनः बहुतराम् मुह्यति । मेरा मन अनेक तरह से मोह को प्राप्त होता है
अर्थात् कुछ निश्चय नहीं कर सकता ।

र० प्र०—जो सिय निर्मल पाँव रखैं सोइ दास समर्थ त्रिलोक रखावैं ।
भूरि पुराकृत पुण्य उदै सोइ चातुर तो पद त्राणहिं ध्यावैं ॥
जासों लहै सब सिद्धि अनूपम गाइ कवी कोउ पार न पावैं ।
हे निमिनन्दिनि देहु दया करि रामकुमार हिये यश आवैं ॥

यहाँ "कैमुत्तिक न्याय" से श्रीसीताजी के चरणों में प्रणाम करने का फल मन बचन आदि इन्द्रियों से परे कहा गया है ॥६५॥

पदस्वेदामोदप्रसरण समाहूतमधुपे,
विमुक्ते मञ्चस्याक्रमणसमये भूमिसुतया ।
पदसूत्रे सूत्रामद्रुमकिशलयप्रश्लथनव—
प्रसूने केनेमे शिरसि सरसं न प्रणिहितम् ॥६६॥

पद स्वेद आमोद (अपने में) चरन के पसीनों की आनंद प्रद सुगंधि की
प्रसरणसमाहूत मधुपे वायु द्वारा फैलाकर बुला लिया है भ्रमरों को जिन पद त्राणों ने. एवं
मंचस्य आक्रमण समये पलंग पर चढ़ते समय जिन पदत्राणों को अपने पद से
भूमिसुतया विमुक्ते श्रीभूनन्दिनी से उतार दिया है, और

सुत्राम द्रुम नव—	कल्पवृक्ष-पारिजातादि इन्द्र के नन्दन कानन के वृक्षों की
किशलय प्रश्लथ प्रसूने ।	नवीन पल्लवों से तुरन्त गिरे हुये (ताजे) फूल हैं जो अर्थात् ये दोनों पनहियां देव वृक्ष के फूलों से बनी हैं ।
इमे पदसूत्रे सरसम् केन शिरसि न प्रणिहितम् ।	ऐसी इन पादत्राणों को प्रेम पूर्वक कौन भाग्यवान पुरुष अपने शिर पर नहीं धारण करेगा ? अर्थात् सभी लोग शिर पर धारण करेंगे, पर केवल अभागी लोग ही न धारण करेंगे ।

र० प्र०—तो पद स्वेद सुगन्धि प्रसारत वायु बुलावति भौंरन को ।
बैठति मंच निकासि जोई पदत्राण जड़ीं मणि मौरन को ॥
दोनी खसी सुरपादप पुष्प की द्वै, महि स्वर्ग ते औरन को ।
भाग्य बड़े शिर धारैं कुमार न ध्यावै ते माँगहि कौरन को ॥

इस श्लोक में चरण से उतारी हुई पनहियो की महिमा का वर्णन है इसलिये कि यह न कोई समझ ले पद त्राण श्रीपद में धारण काल में ही फलप्रद होंगे, भगवत् सम्बन्धी सभी वस्तु सदैव फलप्रद होती है ॥६६॥

न साक्षादस्प्राक्षीन्मृगरिपु-मृगाक्षी-पदयुगं,
तदप्येतां चिन्तां बरमकृत चिन्तामणिकुलम् ।
बिना यांचां वाचामविषयफलं दातुमुचिते,
पदासक्तं नक्तं दिवमवनिजा पत्र युगले ॥६७॥

चिन्तामणि कुलम् (यद्यपि) मृगरिपु मृग-अक्षी	देवमणियों का समूह यद्यपि कि मृग-मारीच के शत्रु श्रीरामजी की प्रिया मृगनैनी श्रीसीताजी के
युगम् पदम् साक्षात् न अस्प्राक्षीत् तदपि	दोनों श्री चरणों को प्रत्यक्ष (स्पष्ट) रूपसे नहीं छूसके परन्तु उसचिंतामणि समूह ने

चिंता अकृत; बिनायांचाम्
वाचां अविषयफलम् दातुं उचिते
अवनिजा पद पत्र युगले
नक्तं दिवं आसक्तं वरम्।

विचार किया कि विना मांगे ही अकथ अपार
बचन अगोचर फल प्रदान करने में परम समर्थ
श्रीसीताजी के दोनों पाद त्राणों में ही
रातदिन लगे रहना श्रेष्ठ है अर्थात् पनहियों में लगे
रहने से हमें सदा पद का संबंध प्राप्त रहेगा।

र० प्र०—चिन्तमणीगण छुइ न सकैं रघुचन्द प्रिया पद पावन को।
ताते जड़ीं पद त्राणन आइ सु आपनो भाग्य बढ़ावन को॥
रीझत राम सदा तेहि जे नित चाहैं सिया पद ध्यावन को।
ताते कुमार निरंतर नेम लै नामरटै मन भावन को॥ ६७॥

स्वशोणीम्ना निम्नानमरमणिमौलीन् विदधती,
सुखोद्योते हेतू बत नयनयोरभ्युदयदे।
जगद्वन्दे सन्ध्य इव सकुरुविन्दे त्रिजगतः—
सवित्रि त्वत्पत्रे परमनुसृते तारक वरैः॥६८॥

हे त्रिजगतः सवित्रि !
त्वत् पत्रे परम
सन्ध्ये इव

हे तीनों लोकों की माता श्री जानकीजी !
आपकी दोनों पादत्राणें केवल (एकमात्र)
प्रातः एवं सायं कालिक दोनों संध्याओं के
समान आपस में ही एक दूसरी के समान हैं।
जो पदत्राण

अमर मणिमौलीन्

प्रणाम करते हुये देवताओं के मणि युक्त
मस्तकों को

स्वशोणीम्ना
निम्नान् विदधती

अपनी लाल वर्ण की कान्ति द्वारा
नीचे झुकाती हुई अर्थात् देवताओं के मुख-
कान्ति को लज्जित करती हुई शोभित हैं।

सुख उद्योते हेतू
नयनयोः वत् अभ्युदयदे

जो सब प्रकार के सुखों के प्रगट के कारण
नेत्रों को अपूर्व आनन्द देने वाला

जगत् वन्दे — सारे ब्रह्माण्ड के अधिकारी वर्गों की इष्ट देवी एवं पूज्यनीया

सकुरुविन्दे — (संध्या कालीन लाल मेघवत्) पद्मराग मणियों से युक्त

तारक वरैः परम् अनुसरते। — नक्षत्रगण युक्त श्रेष्ठ संध्या के समान शोभित हैं

र० प्र०–हेतिहुँ लोकन मातु सियातव द्वौ पदत्राण अन्योन्य लहैं छबि।
ज्यों रवि के उदये अथये युग साँझहिं एक समान लखैं कवि॥
जाके लखे सुरशीशमणीन प्रभा अति लज्जित होइके रहै दवि।
नैन अनन्दि कुमार लहै फल सेव विधी शिव इन्द्र शशी रवि॥

जिस तरह संध्या सारे जगत से वंदनीय है, संध्या लाल मेघों और तारा गणों से युक्त शोभा पाती है उसी तरह श्री पदत्राण समस्त ब्रह्माण्डों के प्रधान २ कार्य कर्ताओं अनेकों ब्रह्मा शिवादिकों से सदा वंदनीय हैं। मेघों से जल की वृष्टि होती है, ये पादत्राण सब सुख बरसते हैं। संन्या अपनी लालिमा से सूर्य चन्द्रादि नक्षत्रों की शोभा को म्लान कर देती है और आकाश को प्रकाशित करती है उसी तरह ये पदत्राणें प्रणत देवताओं और देवांगनाओं के शिरोरत्नों को अपने पद्मरागादि के सामने न्यून कर देतीं हैं पर उन प्रणतों के केशों को शोभित करती हैं। इस तरह 'उत्प्रेक्षाऽलंकार" द्वारा मणि जटित पादत्राणों का वर्णन इस श्लोक में किया गया है ॥६८॥

अमी नूनं 'चामीकर तनुगुणैः पूर्ण निपुणैः,
प्रणीता पदत्राणे नव नव तराः कल्पतरवः।
प्रयच्छन्तो वाञ्छोपरिविदधते लाञ्छन धुरं,
पुराणं गीर्वाणद्रुमगणमलिब्रात कपटात् ॥६९॥

तव पद त्राणे पूर्ण निपुणैः — हे श्रीसीताजी आप की पनहियों में अत्यन्त चतुर कारीगरों ने

चामी करतनु गुणैः नव-नव तराः सोने के महीन तारों से जो अत्यन्त नवीन नवीन

कल्प तरवः प्रणीताः — कल्प वृक्ष बनाये हैं (पनहियों पर अनेकों कल्प वृक्ष नक्काशी द्वारा सूक्ष्म रूप से चित्रित हैं।

अमीनूनम्
वाञ्छा उपरि प्रयच्छन्तः
अलिव्रात कपटात्
पुराणं गीर्वाणद्रुमगणम्
लाञ्छन धुरं विदधते ।

ये कल्प वृक्ष निश्चय करके
कामना (चाहना) से अधिक देते हुये
भौरों के झुण्डों के बहाने से
पुराने (स्थूल) कल्पवृक्ष समूहों को
कलंको के भार (समूह) से युक्त करते हैं

र० प्र०–मति आगर शिल्पी महामति ते सियस्वामिनिहेत किये श्रम गाढ़े।
अति सूक्ष्म सुकंचन तारहिं लै पद त्राणन पै खचि बृक्ष सुकाढ़े ॥
फल चारिहु दासन देत नितै यहिते सुर पादप ते अति बाढ़े।
तेहि ते मँडराइ मिलिन्द कुमार करैं सुर रूख कलंकित डाढ़े ॥

पदत्राणों में चित्रित वृक्षों को स्वर्गीय कल्प वृक्षों से अधिक इसलिये कहा कि (१) वे मुक्ति नहीं दे सकते पर ये पदत्राणस्थ कल्प वृक्ष मुक्ति भी देते हैं। (२) वे तो "जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समन सब सोच। माँगत अभिमत पाव फल राउ रंक भल पोच।" पास जाकर मांगने पर देते हैं। पर इनके ध्यान मात्र से ही सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। (३) वे निकृष्ट फल भी मांगने पर देते हैं पर ये मागने पर भी दासों को निकृष्ट फल नहीं देते। अपितु "माँगिबे मलीनता को मोदक सुदान भी।" (४) वे जितना मांगै उतना ही देते हैं पर ये वाञ्छा से अधिक देते हैं॥ इन्हीं सब कारणों से स्वर्गस्थ कल्प वृक्ष पर मँडराते हुये भौंरों को वास्तविक भौंरे नहीं अपितु भौरों के रूप में कलंक कालिमा कहा और यही कहने से इस श्लोक में 'अपन्हुति-अलंकार' ध्वनित हुआ ॥६६॥

मृशामः सूत्रामद्युमणिवरुणास्तत् पदवती,
समर्थाः स्पृष्टुं न व्यवसित पुमर्थास्तदपि ते।
वसन्त्योतप्रोताः यदिह मिथिलाधीश तनये,
शचीशग्रावाणस्तरणिमणयोमौक्तिक गणाः ॥७०॥

हे मिथिलाधीश तनये !	हे मिथिलेश राजनन्दिनी श्रीसीताजी !
सुत्रामः द्युमणिः वरुणः	इन्द्र, सूर्य और वरुण (ये सब)
तवपद अवती स्पृष्टुं	आपकी पद रक्षिकाओं (पनहियों) के छूने में
समर्थाः न ।	सब समय समर्थ नहीं हो सकते । क्योंकि पाद त्राण हरदम महल में रहती हैं और देव गण हरदम महल में नहीं रहने पाते, नियत समय पर स्तुति प्रार्थना करने जाने पाते हैं और स्तुति प्रार्थना प्रणामादि कर लेने के बाद हर्म्य नियमानुसार बाहर हो जाते हैं ।
तदपि ते पुम् अर्थाः	तो भी उन देवताओं ने अपने जीवन का यथार्थ पुरुषार्थ फल
व्यवसित (म्)	आपके पदत्राण की सतत प्राप्ति ही निश्चित किया है इससे
शचीशग्रावाणः, तरणिमणयः	इन्द्र अनेकों इन्द्रनीलमणि का, सूर्य अनेकों सूर्यकान्त मणि का और वरुण अनेकों
मौक्तिक गणाः इह (पादत्राणे)	मोतियों का रूप बनाकर इस आपके पादत्राणमें
ओत प्रोताः (संतः) वसन्ति	जटित होकर सेवा करने के लिये (वास करते हैं) अर्थात् आपकी पदत्राणें अनेकों प्रकार की मणियों से जटित हैं और
यत्	उनमें जो उपर्युक्त तीन प्रकार की मणियां हैं वे वास्तविक मणियां नहीं है किन्तु इन्द्रादि मणि रूप में हैं
(इति वयम्) विमृशामः ।	ऐसा हम आपके दास लोग निश्चय करते हैं ।

र० ग्र०—वरुणेन्द्र प्रभाकर देव यमादि सिया पद त्राण न देखि सुध्यावैं ।
सुर शक्ति सबै वरदापन की सिय के पद कंज प्रणाम सों पावैं ॥
वरुणेन्द्र रवी मणि मुक्तन ह्वै सजि तो पदत्राण सुबास बनावैं ।
इमि जानत दास कुमार सुभावहिं देव सबै मणिरूप रहावैं ॥७०॥

त्रिवेणीयं चित्रा त्वदमल पदत्राण जटिता—
ऽरुण श्वेताश्वेताद्भुत मयूखैर्परिणता।
गिरां देवी यस्यामपि सुरसरिद्भास्कर सुता,
जनानां धुन्वाना सकलशमलं मज्जति तराम् ॥७१॥

इयम् त्वत् अमल पदत्राण	हे श्रीसीताजी ! आपकी ये स्वच्छ (दिव्य) पनहियाँ
अरुणश्वेत अश्वेत	लाल श्वेत और श्याम इन तीन तरह की मणियों से
जटिता, मयूखैः	जटित हैं और इनकी त्रिविधकिरणों द्वारा एक-साथ ही
परिणता	तीन रूपों में बदल कर प्रयागस्थत्रिवेणी से
चित्रा त्रिवेणी । यस्याम्	अद्भुत त्रिवेणी है । जिस पनही रूपी प्रभामय त्रिवेणी में
गिराम् देवी	पद्मराग मणि की लाल किरणों के रूपमें सरस्वती नदी का लाल जल
सुर सरित्	श्वेतमुक्ताओं की श्वेतकिरणों के रूपमें गंगाजी का श्वेत जल और
भास्कर सुता	इन्द्रनील मणियों की श्याम किरणों के रूपमें जमुनाजी का जल तीनों एकत्र मिलकर उन पनहियों का ध्यान करने वाले
जनानां सकलशमलम्	दासों के सम्पूर्ण-कायिक वाचिक एवं मानसिक पापों को
धुन्वाना मज्जति तराम् ।	दूर करती हुई यह अद्भुत त्रिवेणी आपकी पनहियों में लीन रहती है ।

र० प्र०—रक्त सितासित रंग जड़ी मणि मानों बनी पद त्राण त्रिवेनी।
सोह सुशोण प्रभा सु सरस्वति इन्द्रमणी यमुना सुख देनी॥

मुक्तन की सुप्रभा अति सोहति भागीरथी हरिलोक निसेनी।
ध्यावै सिया पदत्राण कुमार वसै पदकंज नसै अघश्रेनी॥

इस श्लोक में श्रीजी के पदत्राणों को प्रयाग कहा गया है। त्रिविधिमणियों का अनवच्छिन्न प्रकाश गंगा जमुना एवं सरस्वती का अनवरत प्रवाह है, त्रिविध-मणियाँ तीनों नदी हैं। विचित्रता यह है कि (क) प्रयागस्थिता त्रिवेणी में सरस्वती गुप्त हैं परंतु पदत्राणों में पद्मराग रूपेण प्रत्यक्ष हैं। (ख) प्रयाग की त्रिवेणी में जाकर स्नान करने से पाप नाश होता है और इस पनहीरूप प्रयागस्थ त्रिवेणी के ध्यानमात्र से पाप ताप नष्ट हो जाते हैं। कहीं जाने का आयास नहीं करना पड़ता जो जहाँ है वहीं से ध्यान करै। कविवर श्रीलच्छीराम जी ने भी बहुत सुन्दर कहा है—

लालिमा श्रीतरवानि के तेज में शारद लौं सुखमा की निसैनी!
नूपुर नील मनीन जड़े जमुना जगै जौहर में सुख देनी॥
यों 'लछिराम' छटा लख नौल तरंगिनी गंग प्रभा फल पैनी।
मैथिली के चरनाम्बुज ब्याज लसै मिथिला मग मंजु त्रिवेनी॥

(रामचन्द्रभूषण)

यह श्लोक "कैतवापन्हुति" अलंकार का सुन्दर उदाहरण स्वरूप है॥७१॥

यदीहन्ते हन्त श्रवण कुहरेऽनाहतरुता—
नुसन्धानं हित्वाऽद्भुतसुखनिधानं शमधनाः।
दिवोगव्यस्तव्यं सुरमणिरणन्नूपुरनुतं,
मम प्राणःक्षोणीदुहितृचरणत्राणरणनम्॥७२॥

क्षोणीदुहितृ चरणत्राण रणनम् — भूमि नन्दिनीजी की पनहियों के शब्द (अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष सबके प्रदायक होने से)

मम प्राणः। — मेरे प्राण (वत् प्रियधन) हैं।

यत् शमधनाः — जो शब्द मनः विजयरूपी धनवाले वैराग्यशाली योगी पुरुष लोग अपने

कर्ण कुहरे — कानों में मिलने वाले, संसार बीज के नाशक

अद्भुत सुखनिधानम्	अतएव अलौकिक दिव्य ब्रह्मानंद के कोशरूप
अनाऽऽहत	अखण्डरूप से हृदयचक्र–दहराकाश से ब्रह्माण्डस्थ सहस्रार चक्र में अहर्निश
रुत	गूंजते रहनेवाले शब्द के (ध्यान)
अनुसंधानम् हित्वा	निदिध्यासन या अन्वेषण को छोड़कर
ईहन्ते ।	जिस पदत्राण के शब्द को सुनने की चाहना करते हैं ।
हन्त ! कथं भूतं पदत्राणरणनं	अहा—वह पदत्राण का शब्द कैसा है कि
दिवः गव्यः स्तव्यम् ।	स्वर्ग की गाय-कामधेनु से स्तूयमान है अर्थात् अपने से अधिक वर प्रदान करते देखकर काम-धेनु पदत्राणों के शब्दोंकी स्तुति करती है अथवा
(यद्वा)	
दिवो गव्यः स्तव्यम् ।	स्वर्ग की वाणी - सरस्वती से स्तूयमान है अर्थात् अपने से अधिक स्वर माधुरी पाकर सरस्वती पदत्राणों के शब्दों की स्तुति करती हैं ।
(तथा च) सुर + मणि	और मणिरूप से लगे हुए देवता लोग अथवा चिन्तामणियों के समूह
रणत् नूपुर नुतम् ।	शब्द करते हुये घूंघुरों (के शब्द) को प्रणाम करते हैं ।

र० प्र०–पद त्राण गिरा फल देति चहूँ तेहि में महिजे मम प्राण बसै ।
मन जीते शमी मुनि नायक के श्रुति में परि संसृति बीज नसै ॥
दिव्य अखण्ड अनन्त प्रदायि अनाहतनाद न ध्यान धँसै ।
सुर गो मणि पादप लाजि कुमार लसैं पद नूपुर पाव जसै ॥७२॥

दयाऽनन्ते चिन्तामणिमयि पदस्यावनिमृदु—
स्वनैःकर्णे कुर्वन्त्यमृत रस सर्बस्वमधुना ।
सखीहस्तन्यस्तोभयकरतलां स्निग्धसरलां,
दृशोरध्वानं मे गमय कमलामात्तकमलाम् ॥७३॥

हे दयाऽनन्ते !	हे निःसीम करुणावली !
हे चिन्तामणिमयि !	हे अनेक चिन्तामणियों से जटित अथवा अनेकों चिंतामणियों को प्रगट करनेवाली अर्थात् याचकों के अभीष्ट को पूर्ण करनेवाली
हे (श्री जानक्याः) पद अवनि !	हे श्रीसीताजी के पदों के त्राण करनेवाली पनहियो !
(त्वम्) मृदु स्वनैः	आप अपने मधुर स्वरों से सुननेवालों के
कर्णे अमृतरससर्वस्वम्	कान में ब्रह्मानन्द का सार
कुर्वन्ति ।	अर्पण करतीं हैं । अतः कृपा करके
सखी हस्त स्निग्ध	जो श्रीसीताजी अपनी सखियों के हाथों में प्रेम पूर्वक
न्यस्त उभय करतलम्,	अपने दोनों हस्त कमलों को स्थापित किये हैं
सरलाम्	जो श्रीसीताजी निश्छलस्वभाववाली है
आत्तकमलाम्	और जो अपने हाथों में लीला कमल धारण
कमलाम्	किये हैं, ऐसी श्रीजानकीजी को
मेदृशोः अध्वानम्	मेरे नेत्रों के मार्ग में
गमय ।	प्राप्त कराइये अर्थात् मुझे माता श्रीसीताजी का दर्शन कराइये ।

र० प्र०—चिन्तमणीनप्रदायिके सीय दयामयि तौ पद रक्षिका सोहैं ।
श्रुति मोहक शब्द सुधा रसमय करतीं पदत्राण सबै मन मोहैं ॥
निज आलिन के करकंजन दै करकंजन कंजन लीला लगोहैं ।
किमिकै लह दर्शकुमार सिया जननी जन नीके न जानि तजोहैं ॥

श्रीमद्रामचरित मानस में वर्णित है कि नारायणावतार श्रीभरतजी ने भी "मोरे शरण रामहिं की पनहीं ।" कहा था और महाभागवत निषादराज गुहदेव के सच्चे शूर सैनिकों ने भी "सुमिरि रामपदपकज पनहीं ! भाथा बाँधि चढ़ायेन्हि धनुहीं ॥" श्रीसीतारामजी की पद-पनहियों का प्रभाव अनन्त है अतः उन्हीं श्रीसीताजी के पद त्राणों से श्रीसीताजी के दर्शनों के लिये प्रार्थना की गई है ॥७३॥

दयाशीले लीला परिषदि शुकः स्यां तवतदा,
चलच्चञ्चुञ्चुम्बन्पदकवचयोस्ते कवचितम् ।
मणिग्रामं कामं बिदलविदलद्दाड़िमधिया,
करोमि स्मेरां त्वां सह सहचरीभिर्मुहुरहम् ॥ ७४ ॥

हे दयाशीले ! (यदि)	हे परमदयामयि मातः श्रीसाताजी ! यदि
अहं तव लीला परिषदि शुक स्याम्	मैं आपकी विनोद गोष्ठी में तोता होता तो अपनी
चलत् चंचुंते पद कवचयोः	चंचल चोंच से आपके चरण कमल के कवच रूप दोनों पादत्राणों में
कवचितम् मणिग्रामम्	जड़े हुये मणियों के समूह को
विदल विदलत्	पेड़ से टूटे हुये अथवा छिले हुये तथा फटे हुये
दाडिम धिया	अनार के दानों की बुद्धि से अर्थात् पदत्राण में जटित मणियों को अनार के दाने समझ कर उन्हें खाने की इच्छा से—
कामम्	अत्यन्त इच्छा पूर्वक—मनमाने ढंग से
चुम्बन् मुहुः मुहुः	चूम चूम कर बार बार
सहचरीभिः सह त्वाम्	सखियों के सहित आपको प्रतिक्षण
स्मेरां करोमि ।	हँसाया करता । अतः कृपा करके मुझको अपनी विनोद मंडली का तोता बना लीजिये इससे मेरा हित तो होगा ही आपकी प्रिय सखियों का तथा आपका भी मनोरंजन होता रहेगा ।

र० प्र०—करुणामयि मैं तव क्रीड़न कीर जो होत तो आपनी चंचल चोंचन।
पद त्राण जड़ी मणि दाड़िम बीजन बिभ्रम में परि चाहत मोचन॥
अतिभाव समन्वित चोंचन चूमि कुमार सखीन बनाइ निसोचन।
प्रतिद्यौस हँसायो ही मैं करतो तुमको सिय मातु विलोकि सुलोचन॥

यहाँ पदत्राण के स्पर्श सुख (गुण) का अनुसंधान करते हुये शुक भाव

की प्रार्थना की गई है। इस श्लोक में 'भ्रान्त्यलंकार' युक्त 'अनुज्ञाऽलंकार की छटा है ॥ ७४ ॥

अये रामक्षामोदरि मयि कृपां कल्पय तथा,
सदासौ त्वत्सौधावनिषु हरिणो भूय विहरन् ।
यथा दूर्वा पूर्वाङ्कुर चयधिया चुम्बति भवत्
पदत्राण प्रोत त्रिदशपतिमाणिक्यकिरणान् ॥७५॥

अये रामक्षामोदरि !	हे (क्षीण कटिवाली) श्रीराममनोहारिणी श्री सीताजी
मयि तथा कृपां कल्पय	मेरे ऊपर वैसी-निराली कृपा कीजिये
यथा असौ	जिससे कि यह (आपका वात्सल्य भाजन दास मैं)
हरिणो भूय	आपका पालतू क्रीड़ा मृग होकर
त्वत् सौध अवनिषु	आपके मणिमय कनक महल के प्रांगण में
सदा विहरन्	सब दिन आनन्द पूर्वक विचरते हुए
भवत् पद त्राण प्रोत	आपकी पनहियों में जड़ी हुई
त्रिदश पति माणिक्य किरणान्	चिन्तामणि अथवा इन्द्र नीलमणि की नीली किरणों से हरित वर्ण की मालूम पड़नेवाली स्वर्ण भूमि को भ्रम से
दूर्वा पूर्व अंकुर चयधिया	दूब की नई डाभी (अंकुर) के समूह की बुद्धि से अर्थात् उस हरित प्रकाश को दूर्वांकुर समझ कर
चुम्बति ।	चुम्बन करे-ओष्ठ से पकड़ने की चेष्टा करे। इससे सखियों सहित आपका भी मनोरंजन होगा।

र० प्र०—राम रमे करि दाया हमैं निज क्रीड़न को मृग मातु बनावो।
तो मणिमन्दिर प्रांगण में निशि द्यौस भ्रमौं इमिमोहिं सिखावो ॥

जो पद त्राण जड़ी मणि इन्द्र सु तासु प्रभा मोंहिं दूब लखावो।
चुम्बन जाहि कुमार करै लहिकै मुद आलिन चित्त रमावो॥

इस श्लोक में भी ७४ वें श्लोक की तरह खास महल में मृग रूप से बास कराने के लिये प्रार्थना की गई है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने ऐसी ही प्रार्थना किया है कि "खेलिवे को खगमृग तरु किंकर ह्वै राम रावरे हौं। यहि नाते नरकहु सचु पैहों यहि बिनु परम पदहु दुख दहिहौं॥" इसी भाव को प्रसिद्ध प्रेमी रसखानिजी ने इस तरह व्यक्त किया है कि—

"मानुष हों तो उहै रसखानि वसौं किसी गोकुल गांव के ग्वारन।
पाहन हों तो वहीं गिरि को जो कियो सिर छत्र पुरन्दर धारन॥
जो पशु हों तो कहा वश मेरो चरौं नित नन्दकी धेनु मझारन।
जो खग हों तो बसेरो करौं नित कूल कालिंदी कदम्ब की डारन॥

सख्य रस विलासी साकेत निवासी श्रीरामरसरंगमणिजीने भी यही चाहा है कि—

१—हे विधि जो करिये खग वृक्ष मृगादि तो औध विपीन मँझार को।
ह्वै जल जन्तु जियों पै पियों वर वारि सदा सरजू सरि धार को॥
बाहन स्वान बनाइय जो तो सवारी शिकारी श्रीराजकुमार को।
जो नर तो रघुवंशहिं में करौं प्यार सखा रघुनन्दन यार को॥

२—अन्त्यज तो अवधेश को खास सफा करौं भोर दुआर अगार को।
शूद्र तो सार करौं सिय पीय की वैश्य बनौ पुर औध बजार को॥
जो द्विज तो रवि वंश गुरू कुल ह्वै पढ़ौं राम विवाह सुचार कों।
क्षत्रिय तौ रघुवंशहिं में करौं प्यार सखा रघुनंदन यार को॥

टीकाकार की भी कामना ऐसी ही है कि—

नर देह पाऊँ कहूँ, बसूँ औधधामनित कनक महल की प्रदक्षिणा लगाऊँ मैं।
तृण वृक्षवनूंतो प्रमोदकै अशोकवन मीन जो बनू तो सीताकुण्ड ही रहाऊँ मैं॥
खग ह्वै विश्राम बाग बसूँ उड़ूं सरजूलौं कौसला 'कुमार' के अनंत गुण गाऊँ में।
सरजू की बालू धूलि अवधगलीमें रहूँ पाहन को टूक मणिकूट को कहाऊँ मैं॥

महाभागवत श्रीउद्धवजी इस मनोरम भावना के प्रवर्तक ज्ञात होते हैं।

"आसामहोचरण रेणु जुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ॥ भागवत १० । ४७ । ६१ ॥

इस ७५ वें पद्य में भी पूर्वोक्त ७४ वें पद्य की तरह 'भ्रान्त्यलंकारोपकृतानुज्ञालंकार" है ॥ ७५ ॥

पदांगुल्यस्तुल्यांस्तव कुसुमशस्त्रस्य विशिखान्,
जगज्जिष्णुं जेतुं कथमकलयद् बज्र कवचम् ।
अनायासावासं स्मृतिमयमयं वर्मकलयन्,
सुजिह्मब्रह्मास्त्राण्यपि विफलयन्त्यम्बशतशः ॥७६॥

हे अम्ब तव पद अंगुल्याः	हे मातः आपके पद कमल की अँगुलियों ने अपने
तुल्यान् कुसुम शस्त्रस्य	समान सुन्दर पुष्पास्त्रधारी कामदेव के
विशिखान् जेतुं	वाणों के जीतने के लिये और
जगत् जिष्णुं जेतुम्	विश्वविजयी काम के जीतने के लिये
अयं वज्र कवचं कथं अकलयत्	यह हीरक जटित त्राण-पनहीं क्यों धारण किया है ? क्योंकि आपके पद के ध्यान करनेवाले दास गण तो
अनायास आवासम्	जिसमें कोई परिश्रम नहीं अर्थात् ध्यान सुख के निवास स्थान हैं अर्थात् लौकिक कवच के धारण करने में परिश्रम पड़ता है परन्तु ध्यान में कोई परिश्रम नहीं । आपके पद त्राण के ध्यान करनेवाले दास लोग तो
स्मृतिमयम् वर्म अकलयन्	स्मरण रूपी कवच को धारण करके.
सुजिह्मब्रह्मास्त्राणि अपि	अत्यंत कुटिल-भयंकर ब्रह्मवाण आदि को भी
शतशः विफलयन्ति ।	सैकड़ों बार निष्फल-व्यर्थ कर देते हैं ।

र० प्र०—जो सियमातु पदे पनहीं वह ना पद रक्षण कारण धारे ।
कोमलपुष्पहु ते अँगुरी लखि पुष्पधनुष् शर के शर हारे ॥

वज्र जड़ी जनु वर्म बनी जन ध्यावत ब्रह्म शरादिक टारे।
हैं सुखरूप आनंद निवास कुमार सदा करि ध्यान सुखारे॥

माता श्रीजानकीजी ने अपने श्रीचरणों में जो पनहियाँ धारण किये हैं वह कांट कंकड़ शीतोष्णादि निवारणार्थ नहीं अपितु दासों की सहायता के लिये ही हैं ॥७६॥

इला लीलोन्मीलत्कुतुक लतिका पत्रज रजः,
कृपावीरः कश्चिद्वितरति समीरः सकृदपि।
विमुक्ति क्षामांगी बदन कमला मोद लहरी—
मुरी कर्तुं को वा स्पृहयतु तदा क्ष्वेड लहरीम्॥७७॥

इला लीलां उन्मीलत्	पृथ्वी से लीला पूर्वक अनायास प्रगट होनेवाली
कुतुक लतिका	अद्भुत लता रूप श्रीजानकीजी के
पत्रज रजः	पनहियों के तल्लों से झरी हुई धूलि को
कृपावीरः	बड़ी कृपा करनेवाला दयालु उनचास में से
कश्चित् समीरःसकृत् अपि	कोई एक भी पवन एक बार भी मुझे
वितरति, विमुक्तिक्षामांगी	दे देता तो फिर मुक्ति रूपिणी सुन्दरी के
मुख कमल आमोद लहरीम्	मुख कमल से प्रगटित सुगंधि आनंद राशि को
उरः कर्तुं वा कः स्पृहयतु	स्वीकार करने की भला मेरा कौन अंग इच्छा करता अर्थात् कोई नहीं, क्योंकि—
तदा	उस समय अर्थात् श्री पद रज प्राप्त हो जाने पर तो मुक्तियां—
क्ष्वेड लहरीम्।	तीव्र विषकी लहर वत् मालूम पड़ने लगतीं हैं।

अस विचारि हरिभक्त सयानें। मुक्ति निरादरि भक्ति लोभाने॥

र० प्र०—महिजा पद त्राणन धूरि झरी बड़ी दाया धरे कोउ पौन उड़ावैं।
उड़ते कण एकहु एकहुबार कहूँ बड़िभागन ते हम पावैं॥
अति सुन्दरि मुक्तिसुरी मुखकंज सुगंधि महाविषमानि हटावैं।
दिनरैनि कुमार सियापद त्राणन धूरिन में शुचि प्राण रहावैं॥

सभी मुक्तियाँ श्रीसीताजी की पदत्राण धूरिकी अश्रित हैं, मुक्तियाँ तो उस धूरि के ध्यान करने वालों की सेवा उसकी इच्छा विनाही आकर करती रहती हैं—

राम भजत सोइ मुक्ति गोसाईं अनइच्छित आवैं वरि आई ॥ ७७ ॥

पदत्रेऽस्मिन्मुक्ताखिल कलुष मुक्ता फल मिषात्,
कविर्देहव्यूही निवसति बलेरेष सचिवः।
कथं नो चेद्वैरोचनिरनिमिषाधीश नगरी—
मुरी कुर्याद्भूयो दनुजदमनप्राणदयिते ॥७८॥

हे दनुजदमन प्राण दयिते !	असुर नाशक श्रीरामजी की प्राण प्रिये हे सीते !
अस्मिन्पदत्रे अखिलकलुषमुक्त	इस आपके पदत्राणमें, सम्पूर्ण पापों से रहित
	योगवलसे एक काल में अपने
देह व्यूही	शरीर को अनेक रूप में परिणत कर लेने वाले
बलेः सचिवः एष कविः	असुरराज बलि के सहायक ये शुक्राचार्यजी
मुक्ताफलमिषात् निवसति ।	मोतियाँ बनकर (आपकी पनहियों में) रहते हैं ।
नो चेत् वैरोचनिः	यदि ऐसा न होता तो विरोचन पुत्र बलि
पुनः कथम्	(वामन जी के छीन लेने के बाद) पुनः कैसे
अनिमिषाधीश नगरीम्	देवराज इन्द्र की पुरी अमरावती को
उरी कुर्यात् ।	स्वीकार – प्राप्त कर लेते । पुराणों में ख्यात है कि इस वैवस्वत मन्वन्तर के बाद आठवें मन्वन्तर में बलि इन्द्र होंगे, भगवान् के इस प्रस्ताव को बलि ने स्वीकार कर लिया है ।

र० प्र०—दनुजारि प्रिये इन तो पदत्राणन मुक्त मुनीगण ह्वै मणि लागे ।
बलिभूप सहायक शुक्र सदा धरि मौक्तिकरूप महा अनुरागे ॥
असुराधिप बाण पिता यहिते सुरनायक आसन सों मतिपागे ।
धनिधन्य कुमार सिया पद ध्याइ जराइसुसंस्रुति बीजहिं जागे ॥

(क) श्रीसीताजी की पनही सर्वैश्वर्य प्रदायिका है । (ख) सायुज्यमुक्ति

प्राप्त करने वाले महाभाग जीव लोग वस्त्रालंकार आदि बनकर भगवदंग में लगे रहते हैं यही सामुज्यमुक्ति है। इसी शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार भक्तों, मुनिओं देवताओं का मणि आदि के रूपमें श्रीपदत्राणों में वसने की चर्चा यहां तथा अन्य भी कई श्लोकों में की गई है ॥ ७८ ॥

कृती वंशोत्तंसः स किल नलिनाक्षस्य महिले—
ऽखिलैर्मुक्तेत्युक्ता कवचयति यत्संततिरियम्।
चिरं चित्ते चिन्त्यं चरण कवचं तेऽभिदधती,
नियुक्ता मुक्तनामपि सुखविधानेष्विदमिति ॥७९॥

हे नलिनाक्षस्य महिले !	हे कमल नयन श्रीरामजी की पाटमहिषी श्रीसीते
स वंश उत्तंसः	वह कुल अन्य कुलों का शिरोभूषण—सर्वश्रेष्ठ
कृती च।	और कृतार्थ अर्थात् महा भाग्यशाली है।
यत्संततिः ते इयं चरण कवचं	जिस श्रेष्ठ वंश की संतान आपके इस पद त्राण को
कवचयति स	अपने तन मन का कवच बनाती है। वह संतान
अखिलैः मुक्तः	देव, ऋषि, भूत, कुटुम्बीजन और पितृ ऋण सबसे छूट जाता है।*
इति उक्ता। यः चित्ते	ऐसा कहा गया है। वह संतान स्वयं तो मुक्त है ही अन्य मुमुक्षुओं से जो अपने हृदय में
चिरं चिन्त्यम्	बहुत काल से मुक्ति का चिंतवन करते हैं उनसे
अभि इति किल दधती इयम्	बार २ ऐसा निश्चय कराती है कि यह श्री जी की पनही बुभुक्षुओं मुमुक्षुओं की कौन कहे
मुक्तानाम् अपि सुख—	मुक्त जीवों के भी परम सुख आनंद के

---

* देवर्षि भूतासनृणां पितृणां न किंकरो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मा यः शरणे शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ॥ (भागवत ११।५।४१)
सोकुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुवीर परायण जेहि नर उपज विनीत ॥ (रा० च० मा०)

विधानेषु नियुक्ता । प्रदान करने में श्री जी की ओर से नियत की गई है

१० प्र०–सो कुल धन्य विशाल सुपावन जा सुत श्री पद में अनुरागै ।
श्री पदत्राण बनाइ सु वर्महिं अंग न मायिक पौनहुँ लागै ॥
लोक प्रशंसित मुक्तसु आदृत आनँद धामहुँ लौं यश जागै ।
मातु देखावहु सो पद त्राण कुमार न और कछू तोहिं माँगै ॥

लौकिक पारलौकिक सुख यहाँ तक कि मुक्तों के भी परमानंद के हेतु श्री जी के पाद त्राण ही हैं ॥७६॥

कृपायुक्ते मुक्तामय भवदुपानत्प्रसृमर—
प्रभापूरक्षीराब्धेरयमगम्यो मम गिराम् ।
लभन्ते ध्यायन्तोऽप्यमितममृतं यं सकृ—
दपि श्रियो संख्या वदभिमत दिव्या अधिगवी ॥८०॥

हे कृपायुक्ते !	हे करुणामयि मातः श्री सीते !
मुक्तामय भवत् उपानत्	मणि जटित आपके पद त्राणों से जो
प्रसृमर प्रभा अयम्	प्रगट होने वाली आकाश की झलक है वह यह
पूर क्षीराब्धेः	बढ़ा हुआ दुग्ध समुद्र है–इसका वर्णन
मम गिरां अगम्यः ।	मेरी वाणी के लिये अकथनीय है । अकथनीयता का कारण यह है कि समुद्र मंथन से एक एक ही अमृत लक्ष्मी कामधेनु कल्पवृक्ष एवं चिन्तामणि का प्राकट्य हुआ था, परन्तु इन आपके पद तो –
सकृत् अपि ध्यायन्तः	एक वार भी ध्यान करने मात्र से ही दासगण
अमितम् अमृतम् संख्यावत्	बहुत से दिव्य अमृत को और पण्डितों से
अभिमत असंख्या श्रियः	प्रशंसित अनगिनती लक्ष्मी और
असंख्या अधिगवी लभन्ते ।	असंख्य कामधेनु कल्पवृक्षादि प्राप्त करते हैं ।

र० प्र०-मातु कृपामयि तो पद पानहिं ते कढ़ि दिव्य प्रभा वगरै।
सो जनु दुग्ध समुद्र अगम्य तहां मम वाणि नहीं पसरै॥
ताहि प्रशंसि असंख्य मणी-सुर-धेनु-तरू निज शक्ति भरै।
सो इक वारहु ध्यानहिं पाइ कुमार प्रमुक्ति सुधा निदरै॥८०॥

परित्यज्य प्राज्यानपि मखभुजो मय्यवनिजा—
पदाभ्यामभ्यस्यावसतिरिति पद्माहिनिमदम्।
जहीहि त्रायेथारिति कथयतः क्वापि समये,
न किं हित्वाऽपित्वां मम वसतिमायास्यत इमे॥८१॥

हे पद्माहिनि !	हे श्रीजानकीजी की पनहियो ! आप
इति मदम् जहीहि	ऐसे अभिमान को छोड़ दीजिये कि
प्राज्यान् मखभुजः	श्रेष्ठ गुणवाले और यज्ञ में भागपानेवाले देवताओं को
परित्यज्य अवनिजा पदाभ्याम्	छोड़ कर श्रीजानकीजी के दोनो चरण कमल
मयि वसतिः अभ्यस्या	मेरे भीतर सब दिन वसने के अभ्यासी हो गये हैं अर्थात् मुझे छोड़ कर ये कहीं कभी जा ही नहीं सकते अतः मैं ही सर्व श्रेष्ठ हूँ, मेरा यह अभिमान कभी भंग हीन होगा।
क्वापि समये	क्योंकि कभी किसी महान् संकट से समय में जब मैं कहूँगा कि हे माता श्रीसीताजी इस महान् संकट से
माम् त्रायेथाः	मेरी रक्षा कीजिये त्राहि मां त्राहिमाम् मेरे
इति कथयतः इमे	ऐसा कहने पर तुरंत ही श्रीजी के ये दोनों पद कमल
त्वां हित्वा किं मम वसतिम्	तुम्हें छोड़ कर शीघ्रता से क्या मेरे स्थान पर (घर पर)

न आयास्यतः अपि । नहीं आवेंगे, अवश्य दौड़े आयेंगे। दृष्टान्त रूप में गजेन्द्र का स्मरण पर्याप्त है।

र० प्र०-हे पदवाहिनि गर्व तजौ महिनन्दिनि पाद क्षणौ नहिं त्यागैं।
यज्ञ प्रपूजित देवन त्यागि सदा हमरे उर में अनुरागैं॥
कबहूँ अति औघट औसर में परि दासकुमार जो रोवन लागैं।
तो दिशि हेरि न मंचक त्यागि दयामयि पाँय पयादेहिं भागैं॥

इस श्लोक में छेकोक्ति द्वारा पदों की करुणा का वर्णन करते हुये कटाक्ष से पदत्राण ही का वर्णन किया गया है॥ ८१॥

द्विजोत्तंसैर्हंसैरविरतमुपास्ये महिसुता
पदावन्यावेते कनक कमलिन्यावनुपमे।
यदुद्दामेन्द्राश्म द्युति वितत नालेषु दिविषद्
विशालाक्षी रिंगत्कर कमल लक्षं विजयते॥८२॥

द्विज उत्तंसैः	पक्षियों अथवा ब्राह्मणों में शिरोभूषण अर्थात् श्रेष्ठ
हंसैः	हंसों अथवा परमहंसो भक्त महर्षियों से
अविरतं उपास्ये एते	निरन्तर सेवित ये दोनों
महिसुता पदावन्यौ अनुपमे	श्रीजानकी की पनहियाँ उपमारहित खिले हुये
कनककमलिन्यौ।	स्वर्ण के पीत कमलों से शोभित दो नदियां हैं।
यत् उद्दाम	इस पनही रूपी नदी के जिन विकसित कमलों की श्रेष्ठ
इन्द्राश्मद्युति	इन्द्रनीलमणि-नीलम की कान्ति समूह ही
वितत नालेषु	विस्तृत-बड़ी लंबी नाल है इन हरित नालों पर
दिविषद् विशालाक्षी	इन्द्रादि देवताओं की शची प्रभृति बड़े बड़े नेत्रों वाली देवियां जब उन पादत्राणों की पूजा करतीं हैं उस समय उनके
रिंगत् लक्षम् करकमल	चंचल होते हुये लाखों पीत कमलवत् हाथ

विजयते ।

शोभा पाते हैं । मानों इन पनहीं रूपिणी नदियों में लाखों पीत कमल खिले हैं ।

र० प्र०–द्विज राजशिरोमणि हंस रिषीन सुसेवित श्रीपद की पनहीं ये ।
द्वै सरि स्वर्ण सुकंज विकासित सक्रमणीन करैं तृनहीं ये ॥
वानी उमादि प्रपूजित ह्वै कर कंजदृगों उपमा न लहीं ये ।
लाखन हाथन लालित नित्य कुमार जिते जगराजि रहीं ये ॥८२॥

विदूरान्वन्दारु त्रिदशवर कोटीर शिखर—
स्फुरद्धीर क्षीरोज्ज्वल कर सहस्र द्यु सरितः ।
यदिन्द्राश्म श्रेणी किरण वरुणागार शरणा,
विराजन्ते सन्तः स्मरततदिराजांघ्रिकवचम् ॥८३॥

भो सन्तः ।	हे सज्जनों ! आप लोग
इरा जा तत् अंघ्रिकंवचंस्मरत	भूमिनन्दिनीजी की उन पादत्राणों को स्मरण कीजिये
यत् विदूरात्	जिनमें प्रतिबिम्ब रूप से पड़ते हुये बहुत दूर से
वन्दारु त्रिदशवर कोटीर	ही प्रणाम करते हुये श्रेष्ठ इन्द्रादिकों के मुकुट के
शिखर स्फुरत्	अग्रभाग कलँगी में लगे हुये प्रकाश मान
हीर क्षीर उज्वल कर	मणियों के दुग्ध-समान स्वच्छ = श्वेत किरणैं ही
सहस्र द्यु सरितः	हजारों धार वाली देवनदी गंगाजी हैं । समुद्र में मिलते समय गंगाजी में हजारों धार हो जाना प्रसिद्ध है । और पनहियों में जड़े हुये
इन्द्राश्म श्रेणी किरण	इन्द्र नील मणि की पंक्तियों से निकलती श्याम प्रकाशमय किरणें
वरुणागार शरणा विराजन्ते !	वरुणालय = समुद्र के समान शोभित होतीं हैं अर्थात् हीरे और नील मणियों का सम्मिलित प्रकाश गंगा सागर के समान शोभित हो रहे हैं ।

र० प्र०-भूरि कृपा जननी महिजा पद त्राण सदा सब सज्जन ध्यावैं।
सुर क्रीट लगी कलँगी मणि भूपरि दुग्ध समान प्रभा बगरावैं॥
सो सुरगंग सहस्रन धारन सिन्धु सिया पनहीं मिलि जावैं।
गंग समुद्र सुसंगम सों मिलि ध्याइ कुमार परं पद पावैं॥८३॥

मुख ब्रह्म ब्रह्म प्रमुख सुर कोटीर शिखर,
स्फुरद्धीर क्षीर छवि हर महः पूर निबहः।
यदिन्द्राश्म श्रेणी किरण निकरे सागर इव,
प्रवाहः स्वर्वाप्यस्तदवतु सवित्र्यङ्घ्रिकवचम् ॥८४॥

सवित्री	चिर अहिवात शालिनी जगज्जननी श्रीसीताजीकी
तत् अंघ्रिकवचं अवतु	वह पादत्राण हम सबकी सदा रक्षा करै।
यत् मुख ब्रह्म ब्रह्म प्रमुख	जिस पादत्राण में मुख से सदैव वेद ही उच्चारण करने वाले चतुर्मुख ब्रह्मा इत्यादि प्रधान प्रधान
सुर कोटीर शिखर हीर महः	देवताओं के मुकुट की कलंगी में लगे हुये हीरों मणियों की प्रभा ही
क्षीर छवि हर सुरवाप्यः	दुग्ध की शोभा हरण करने वाली देव नदी श्रीगंगाजी के
पूर निबहः।	प्रवाह का समुदाय अर्थात् सहस्र धारा है। और
इन्द्राश्म श्रेणी	पद त्राण में जटित नील मणियों की पंक्तियों की
किरण निकरे	किरणों में समूह जो श्याम प्रभा का
प्रवाहः	प्रवाह है वही
समुद्रः इव (राजते)।	समुद्र के समान शोभित है।

(अतः संतः स्मरतेति पूर्वेणान्वयः) अतएव हे संतो इनपद त्राणों का ध्यान करो।

र० प्र०-सिय की पदत्राण करैं मम त्राण जिन्है विधिशम्भु कीरीटन्हि पूजैं।
छविसिन्धु हरैं पयसिंधु छवी उपमा कहँ दृष्टि न आवत दूजैं॥
पनही मणि श्याम प्रभा जनु सिन्धु अजादि कीरीट भा जन्हुतनूजैं।
जनु सागर गंगसमागम है करि ध्यान कुमार उदार मनूजैं॥८४॥

समुद्रान्तर्निद्रा प्रवणभगवच्चन्द्र बदना,
पदाधारोद्धारी स्फुट पुरट पीठोद्भवतटात् ।
पटु प्रेम प्रह्वामरक मुकुटोद्घृष्ट कटका—
दुदंचद्भिः पुंजैः कनक रजसां पिंजरमुखः ॥८५॥

समुद्र अन्तः निन्द्रा	क्षीर समुन्द्र के भीतर निन्द्रा लेने वाले नारायण के
प्रवण भगवत् ❀	कारण स्वरूप सर्वैश्वर्य पूर्ण भगवान् श्रीराम जी की प्रिया
चन्द्रबदना	चन्द्रमुखी श्रीसीताजी के
पदाधार स्फुट पुरट	पदत्राणों को प्रत्यक्ष रूप से स्वर्ण के
उद्भव पीठ तटात्	बने सिंहासन के पास से
उद्धारी उदंचद्भिः	उठाकर लाने वाला भृत्य-दास के ऊपर उड़ती हुई
कनक रजसां पुंजैः पिंजर मुखः	सोने की धूलिसमूह से वह पीतरंग के मुखवाला हो जाता है। सिंहासन के पास धूलि समूह हो जाने का कारण यह है कि—
पटु प्रेम प्रह्व	अत्यंत प्रेम से नम्र होकर अपने मस्तक को सिंहासन पर रखकर प्रणाम करने वाले जो देवगण हैं उन
अमरक मुकुट उद्घृष्टकटकात् ।	देवताओं का झुंड अपने शिरके क्रीट और हाथके कंकणों-कड़ों को स्वर्णसिंहासन में बार बार

❀ ज्ञान शक्ति बलैश्वर्य तेजो वीर्याण्यशेषतः ।
भगवच्छब्द वाच्यानि बिना हेयैर्गुणादिभिः ॥
पोषणं भरणाधारं शरण्यं सर्व व्यापकम् ।
कारुण्यं षड्भिः पूर्णो रामस्तु भगवान् स्वयम् ॥

रगड़ते हैं उसी रगड़ से स्वर्णधूलि झड़कर नीचे पाद त्राणों पर पड़ती है।

र० प्र०—पय सिंधुशयी हरिहू के सु कारण राम सबै भग ऐश्वर पूरे।
चन्द्रमुखी तिनकी प्रियसीय-पदाम्बुज में पदत्राण जु जूरे॥
पादुक स्वर्ण सिंहासन पै सुर क्रीट कड़े रगड़ैं उठै धूरे।
रज पीत उड़ै परै दास कुमार पै नाहिं कबौ तिनको यम घूरे॥

नित्य असंख्यों देव देवेश गण श्रीजानकीजी को प्रणाम करने आते हैं अतः श्रीजी की पदत्राण जगद्वन्दनीय है॥ ८५॥

पदावन्योर्धन्ये तव वितरणं वेत्यनिमिष—
द्रुमाली त्वल्लीला वनमुपगता नन्दन वनात्।
भवत्या खेलन्त्यामुपवन सरस्यां यदनयो—
स्तलस्थेये प्रेम्णा सृजति कुसुमैरर्चनमियम्॥८६॥

हे धन्ये!	हे उभय विभूतिरूप धन की स्वामिनि अथवा धन्यवादार्हे श्रीसीते!
तव पदावन्यौ वितरणम्	आपके पदत्राणों की दान शक्ति को
अनिमिषद्रुमाली	देवतरु=कल्पवृक्ष की पंक्तियां अपनी दातृत्व शक्ति से अधिक —
वेत्ति	जानती हैं कि ये श्री पदत्राण यांचा से अधिक देतीं हैं और हम मोक्ष तो देही नहीं सकते, अर्थधर्म काम में भी जो जितना मांगे उतना ही दे सकते हैं ये माँगने पर भी प्रतिकूल फल नहीं देतीं और हम तो मांगने पर प्रतिकूल भी देते हैं— 'मांगत अभिमत पाव फल राउ रंकभल पोच॥" इसी से श्रीजूके पद त्राणों की पूजा करने—
इयं अनिमिष द्रुमाली	यह कल्पवृक्षों की पंक्ति

नन्दन बनात् त्वत्	इन्द्र के विहारोद्यान से आपके, अशोक बन नामक
लीलावनं उपगता	क्रीड़ोद्यान में आई है।
यत् (यस्मिन्काले)	जिस समय आपके
उपवन सरस्याम्	अशोक बनके अपने सीताकुण्ड नामक क्रीड़ा सरोवर में सखियों के साथ
खेलन्त्याम् भवत्याम्	खेलती=क्रीड़ा करती हुई आपकी
अनयोः तलस्थेये	इन दोनों पनहियों के कल्पबृक्ष के नीचे रखे जाने पर वहां स्थित रहने वाली पनहियों की
प्रेम्णा कुसुमैः	वे कल्पबृक्ष प्रेम पूर्वक अपने फूलों से
अर्चन सृजति।	पूजन करते हैं।

र० प्र०–धन्य सिये तव पानहीं दान में देवतरू के समूहन जीतैं।
ताहिते आइ अशोक बनै बसि नन्दन कानन को करि रीतैं॥
क्रीड़ैं जबै सिय प्रेमसरोवर लै सखि राखि तरूतर प्रीतैं।
फूलतबै वरसाइ कुमार प्रपूजत श्रीपदत्राणहिं हीतैं॥

श्री अयोध्याजी के द्वादशबनों में अशोकवन नामक श्रीजानकीजीका क्रीड़ोद्यान कनक महल की दक्षिण परिधि में है इसी अशोकोद्यान में मणिपर्वत नाम वाला श्रीजानकीजी का क्रीड़ा पर्वत और श्रीसीताकुण्ड नामक क्रीड़ा सरोवर है उस क्रीड़ा सरोवर में जब श्रीजानकीजी सखियों के साथ विहार करने लगती हैं उस समय आपकी पनहीं किनारे के पारियात, मंदार एवं कल्पबृक्ष आदि वृक्षों में किसी वृक्ष के नीचे रहती हैं। पवन प्रसंग से तत्तद्वृक्षों के फूल जो झरझर कर पनहियों पर गिरते हैं उसीका वर्णन आलंकारिक भाषा में इस श्लोक में किया गया है॥८६॥

अजस्रं यः स्रंसत्यभिनवभवत्पद कवचयोः,
समन्तात्सीमन्ताभरण नव सिन्दूर शबलः।
तमेव स्वर्वामा सुरभिकबरी माल्य रजसां,
कदम्बे हेरम्बः शिरसि कुरुते लम्बकरतः॥ ८७॥

स्वर्वामा सुरभि	प्रणाम करती हुई देव पत्नियों के इत्र से सुवासित
कबरीमाल्य कदम्बे	वेणी किंवा जूड़ाओं में लपटे हुये पुष्प मालाओं के समूह की
रजसां सीमन्त आभरण	पराग और उनके माँग का शृंगार स्वरूप उसमें
नवसिन्दूरशबलः	तुरंत का भरा हुआ सिंदूर दोनों पुष्परज और सिंदूर मिलकर
यःभवत् अभिनव	जो आपके नित्य नवीन अर्थात् दिव्य
पदकवचयोः समंतात् अजस्रं	पदत्राणों के चारो तरफ निरन्तर
स्रंसति । तम्	गिरती हैं, उस पराग मिश्रित सिंदूर को आपके पदत्राणों के स्पर्श से अत्यन्त पवित्र जानकर
हेरम्बः लम्बकरतः	गणेशजी अपनी लम्बी शुण्ड से अपने
शिरसि कुरुते ।	शिर पर तिलक रूप से धारण करते हैं इसी के प्रभाव से वे विघ्न विनाश किया करते हैं ।

र० प्र०–देव तियागन बासित वेणिन माल पराग सिमन्तन राखैं ।
जो सँग सेंदुर के मिलिकै सिय की पनहीन झरैं रस चाखैं ॥
सो गणनाथ भुशुण्ड भरैं सुललाट अलंकृत कै अभिलाखैं ।
ताते बने तिन विघ्न विनाशक शंभु कुमार सदा शुभभाखैं ॥

पिधत्तस्त्वत्पत्रे चरण शतपत्रे तव जगत्—
प्रसिद्धे सिद्धीशे सुरतरु सुमौघः पुनरिमे ।
इमं तावद्भावग्रहिल विबुधोत्तंस महिला,
कवर्यास्ता एताश्चतुर मधुकर्यः पिदधते ॥ ८८ ॥

हे जगत्प्रसिद्धे !	हे सर्व विश्वविख्यात श्रीसीताजी !
तव चरण शतपत्रे त्वत्पत्रे	आपके दोनों चरण कमलों को आपकी पनहियां
पिधत्तः । पुनः इमे	ढँक लेती हैं । फिर इन दोनों
सिद्धीशे सुरतरु	सर्व सिद्धियों की स्वामिनियों = पनहियों को देव वृक्ष के

सुम ओघः पिधत्ते ।
तावत् इमं भावत

फूलों के समूह ढंक लेते हैं । और
उसी समय इस पुष्प समूह को अत्यंत प्रेम से भरी होने से

ग्रहिल बिबुधोत्तंस
महिला कवर्य्यः पिधत्ते ।

प्रेमाग्रह करके ब्रह्माशिव इन्द्र चन्द्र आदि की पत्नियों की चोटियाँ ढंक लेती हैं । तात्पर्य यह कि पनहियों पर चढ़े पुष्पों को आपस में छीना झपटी कर के देवियां अपने केश कलापों में धारण करने के लिये उन्हें अपने शिर पर रख लेतीं हैं ।

ताः एताः
चतुर मधुकर्यः पिधत्ते ।

उन पुष्प विशिष्ट इन देवियों की चोटियों को उन पुष्पों के महात्म्य जाननेवाली निपुण भ्रमरियां ढँक रखती हैं ॥

र० प्र०—जग जाहिर रामप्रिया पदकंजन्हिदृनौ सदा पनहीं ढंकि लेवैं ।
सुर पादप पुष्पन दास चढ़ाइ तवै पनहीन परागन सेवैं ॥
रतिवानीशची गिरिजादिक देवि नमैं निजवेणिन पुष्प लै देवैं ।
पुष्पमयी अलकावलि को ढँकैं भौंर कुमार जे जानत भेवैं ॥

इस श्लोक में 'दीपकैकावली अलंकार' से पद त्राणों का वर्णन करते हुये श्रीसीताजी से यह प्रार्थना व्यंजित की गई है कि—चार आवरणों से आच्छादित आपके श्रीचरण कमलों को मैं अपने पुरुषार्थ से नहीं देख सकता आपही अपनी अहैतुकीय दया से दिखलाइये ॥ ८८ ॥

जगद्योगक्षेमौ जनकजगतीजानि तनये,
त्वदीये पादाब्जे बहत इमके रत्नकवचे ।
मम प्रेम प्राणावपि वहत एते पुनरहं,
बहाम्येतौ तस्मादिह मम समानोऽस्तु कतमः ॥८९॥

* हे जगतीजानिजनक तनये !	हे पृथ्वीपति जनक की लाड़िली बेटी श्रीसीताजी
त्वदीये पादाब्जे जगत्	आपके ये दोनों चरण कमल समस्त संसार के
योग क्षेमौ (अलब्धलाभोयोगः	अलभ्यवस्तुओं को भी भक्तों को प्राप्त करा देने की शक्ति
लब्धपरिपालनं क्षेमः ।)	और प्राप्त पदार्थों के रक्षा करने की शक्ति को
वहतः । इमके	धारण किये हैं और इन दोनों श्रीचरणों को
रत्नकवचे वहतः	मणि चित्रित पनहियां धारण किये हैं पुनः
एते मे प्रेमप्राणौ वहतः ।	इन पदत्राणों को मेरा प्रेम और प्राणधारण करता है
पुनः एतौ अहं वहामि ।	और इन दोनों-प्रेम और प्राण को मैं धारण करता हूँ ।
तस्मात्	इसलिये अर्थात् पर्याय से सारे विश्व को धारण करनेवाला होने से
† मम समानः कतमः अस्तु ।	मेरे समान इस संसार में कौन हो सकता है ? अर्थात् कोई नहीं अतएव मैं ही सबसे बड़ा हूँ ।

र० प्र०–भूपति मैथिलराजसुते तव दोउ पद योग सु क्षेम वहैं ।
जापद को मणि चित्रित पानही आपने भीतर धारि रहैं ॥
सो पनहीं मम प्रेम औ प्राण धरैं हम प्राणहिं प्रेम चहैं ।
तेहिकारणसों तिहुँ लोकनि में नहिं कोऊ कुमार समान अहैं ॥

---

* आपने आपने ठौरनितो भुवपाल सबै भुविपालैं सदाई ।
केवल नामहि के भुवपाल कहावत हैं भुविपालि न जाई ॥
भूपन की तुमहीं धरिदेह विदेहन में कल कीरति पाई ।
'केशव' भूषण की भविभूषण भू तन तें तनया उपजाई ॥
(रामचन्द्रिका ५ । २४)

† कविजन करत विचार बड़ो को ताहि भनी जै ।
कोउ कहे अवनी बड़ी जगत आधार फनीजै ॥

पूर्वोक्त ८८ वें श्लोक की तरह इस श्लोक में भी दीपकैकावली अलंकार से श्रीसीताजी की पनहियों की महिमा कही गई है। दीपक और एकावली का लक्षण-दीपक-अप्रस्तुत प्रस्तुतयोर्दीपकंतु निगद्यते ॥ (विश्वनाथवंदीजनः) उपमानोपमेयवाक्येष्वेका क्रियादीपकम्। (वामनाचार्यः)

अर्थात्—दीपक वर्ण्य अवर्ण्य को एकै धर्म कहाय।

एकावली—पूर्वं पूर्वं प्रति विशेषणत्वेन परं परम्।

स्थाप्यतेऽपोह्यते वा चेत् स्यात् तदैकावली ॥ सा० द. १०।१०१

अर्थात्—किये जँजीरा जोर पद एकावली प्रमान ॥ ८६ ॥

बहिर्मुक्ते लीला गृह गमन वेलासु वसुधा—
दुहित्रेत्यङ्घ्रित्रे निजबिफलतामाकलयताम्।
विना वां किंवा स्याः पद किसलयोद्द्रष्टुमधिको—
त्सुकानां लोकानां जनयतु विनोदं नयनयोः ॥९०॥

हे अंघ्रित्रे ! युवाम्	है श्रीजानकीजी की पनहियों ! आप दोनों
लीलागृह गमन वेलासु	रंग महल में जाने के समय में
आवां वसुधा दुहित्रा	हम दोनों को श्रीभूमि नन्दिनीजी ने महल के दरवाजे पर

सोधारी शिर शेष शेष शिव भूषण कीन्हो।
शिव आसन कैलाश भुजन रावण भरि लीन्हो॥
रावणः जीत्यो वालि वालि राघव इक सर दँड़े।
अग्र कहैं त्रैलोक महँ हरि उर धारे ते बड़े॥

(श्रीअग्रदासजी महाराज)

पृथिवी तावदियं सुमहती तद्वेष्टनं वारिधिः,
पीतोऽसौ कलशोद्भवेन मुनिना स व्योम्नि खद्योत् वत्।
तद्विष्णोर्दनुजाधिनाथदमेन पूर्णं पदं नाऽभवत्,
देवोऽसौ वसति सुसन्त हृदये सद्भ्यो महानत्र कः॥

(सुभाषित पद्यावली)

बहिः मुक्ते — बाहर ही छोड़ दिया है चरणों से पृथक् कर दिया है

इति विफलतांमा आकलयताम् — इसमें आप अपनी न्यूनताई मत विचारिये

किंवा अस्याः पद किसलयौ — किंतु ऐसा विचारिये कि इन श्रीसीताजी के नवीन पल्लव के समान लाल एवं कोमल युगल चरणों के

द्रष्टुं अधिक उत्सुकानाम् — दर्शन करने के लिये जो अत्यंत उत्कण्ठित है उन

लोकानां नयनयोः — लोगों के नेत्रों की

आवां विनाः विनोदं कः जनयतु । — हमारे बिना कौन आनंद देगा ? अर्थात् कोई नहीं ।

र० प्र०—क्रीड़ा गृहे गमनैं जब सीय तुम्हें तजि द्वारिंह पानहि देहीं ।
यामें न आपुहिं न्यून बिंचारिये यों मनमें गुनि शान्ति सुलेहीं ॥
कोमल लाल सिया पद पल्लव जो किहु भाँति न दर्श लहेहीं ।
ते अति उत्सुक दर्शन हेतु कुमार लखे तोहिं आनंद लेहीं ॥

श्रीजी के पद पल्लवों के संयोग से पद त्राणों की महिमा भी अनन्त हो गई है इसे जनाते हुये इस श्लोकमें कहा गया है कि जो दर्शनाभिलाषी भीतर नहीं जा सकते उन्हें पनहियों के दर्शन से ही आनन्द लाभ हो सकता है । 'संतभगवंत अन्तर निरन्तर नहिं किमपि मति मलिन कह दास तुलसी ।" न्यानुसार श्रीजी की पनहियों के समान ही संत एवं गुरु की जूती की धूरि की महिमा वर्णन करते हुये किसी कवि ने बहुत सुन्दर ढंग से कहा है कि -

भक्ति कालबूती मुक्ति मानिनी की दूती मोद मंगल प्रसूती दानि उभय लोक भूती की । आनन्द अछूती कामधेनु कीसी दूती अति पूतहू ते पूती लूती पातक बारूती की ॥ प्रेम कन्द पूती ज्ञान कपिल देवहूती भली विमल विभूती भालसिद्ध अवधूती की । उग्र करतूती हरै कलि की कपूती भूरि महिमा अकूती धूरि संत गुरु जूती की ॥ ६० ॥

परिष्वक्ते मुक्तावलिभिरभितस्तेंऽघ्रिकवचे,
नमन्ते दूरेण प्रणयरसपूरेण तरलाः ।
सुपर्वाणः केनो पशुतरुविशेषान्यतरतां,
स्तुवन्तो निन्दति त्रिदश पदवीं रामदयिते ॥९१॥

हे रामदयिते !	हे श्रीरामजी की प्राणप्रिये श्रीसीताजी !
अभितः मुक्त—	चारों तरफ से मोतियों के रूपमें नित्य मुक्त सूरियों की
अवलिभिः पारिष्वक्ते	पंक्तियों से आच्छादित अर्थात् नित्य मुक्त गण मणियां बनकर आपकी पनहियों में लपटे रहते हैं
ते अंघ्रिकवचे	ऐसी आपकी पहनियों का माहात्म्य जानने से
प्रणयरस पूरेण तरलाः	भक्ति प्रेम रसके प्रवाह से आर्द्र-भीगे हुये
[1]कः सुपर्वाणः इनः	सूर्य अग्नि, वायु, वरुण यम एवं देवराज इन्द्रादि देवगण
दूरेण नमंति[2]	दूरसे ही नमस्कार करते हैं । और
पशुतरुविशेषान्यतरताम्	[3]खास खास वृक्षों और पशुओं की

---

१ को ब्रह्मणि समीरात्म यम दक्षेषु भास्करे । मयूरेऽग्नौ च पुंसि स्यात्सुख-शीर्ष जलेषु कम् ॥ (इति मेदिनी)

२ क्योंकि 'भव प्रवाह संतत हम परे ।' के अनुसार देवता लोग वद्ध जीव है और पनहियों में मुक्त नित्यों का वास है वद्ध जीव बद्धावस्था में नित्य मुक्तों के पास नहीं जा सकते इसी से दूर से ही प्रणाम करते हैं ।

३ अर्थात् जिन पशुओं के रोम ऊन) या चमड़े की ये पादत्राण हैं अथवा पनहियों के रखने की मंजूषायें बनी हैं उन पशुओं की और जिन वृक्षों की लकड़ियां अथवा छालों (जैसे केला, तीसी, पटुआ सन, पलाश आदि) अथवा कपास नारियल आदि फलों की ये श्री जू की पनहियाँ (चट्टियां खड़ाऊँयें आदि) बनी हैं अथवा इनके रखने के लिये मंजूषायें बनी हैं उन खास खास पशुओं वृक्षों की स्तुति करते हैं ।

स्तुवन्तः त्रिदशपदवीम् निन्दति।	स्तुति करते हुये अपनी देव पदवी की निंदा करते हैं कि यदि हम भी वही पशु और वृक्ष होते तो हमारा भी ऐसा ही सौभाग्य होता।

१० प्र०-रामप्रिये तव पानही के चहुँ ओर सु मुक्तन भरि विराजैं।
बूड़ि सु प्रेम प्रवाह शिवादिक दूरिहि ते प्रणमैं सुख साजैं॥
वृक्ष पशूनि प्रधान प्रशंसत देवन की पदवी लखि लाजैं।
निन्दैं कुमार सुरादि प्रभाव सु मुक्त स्वरूप चहैं तँह छाजैं॥

पद और पदत्राण का महात्म्य दिखाते हुये कैमुत्य न्याय से पदत्राण प्राप्ति की दुर्लभता इस श्लोक में दिखाई गई है। यहाँ तक तीस श्लोकों में श्रीजी के पादत्राणों का वर्णन है॥ ९१ ॥

उषस्तीरोत्तीर्णा त्रिदशपुरपूर्णेन्दुवदनां-
जलिस्रस्त स्वर्णाम्बुज नव रसस्युर्वितनये।
त्वदंघ्रि स्पृक् पीठांघ्रिषु परिधिभूते घृणिरयं,
लुठित्वा तद्रागं जगति सविभागं बितरति॥ ९२॥

हे उर्वि तनये!	हे श्रीभूनन्दिनीजी!
त्वत् अंघ्रि स्पृक् पीठ अंघ्रिषु उषः	आपके चरणं स्पर्श करनेवाले सिंहासन के पायों में प्रातः समय स्वर्ग से आकर श्रीसरयूजी में स्नान करके
तीर उत्तीर्ण त्रिदशपुर पूर्णेन्दुवदना अंजलि	किनारे पर आई हुई देवलोक की पूर्ण चद्रमुखी सुन्दरियों के अंजलियों द्वारा आपके चरणों में
स्रस्त नवस्वर्ण अम्बुज	समर्पित नवीन = सद्यःविकसित स्वर्ण कमल की जो श्रेणी, उस सिंहासन के चारों ओर
परिधिभूते रजसि अयम् घृणिः	माला या मण्डल के रूप में फैली हुई पुष्पपंक्तिके अनेक रंगी रज में यह सूर्य साष्टांग करते हुये

लुठित्वा तत्रागम्—	लोट पोट कर उन्हीं परागों से अपने शरीर को रंग कर अपनी रंग विरंगी किरणों को।
सविभागं जगति वितरति।	भागानुसार=यथायोग्य सारे संसार में फैलाते हैं।

र० प्र०—हे महि नन्दिनि प्रात समै बहु राकाऽऽननी सुर नारि नवीनी।
सो सरजू सरि मज्जि समर्पति कंचन कंज सरत्न प्रवीनी॥
तो पद पर्शि सिंहासनपाद पराग लुठैं रवि लै चित दीनी।
पावैं तहाँ रंगसात कुमार त्रिधामपसारि तिन्हैं यश लीनी॥

छान्दोग्योपनिषत् के तृतीयाध्याय के चार खण्डों में सूर्य के अनेक रंगमयी किरणों के द्वारा सूर्य को जो जगत-त्रिभुवन का जीवन कहा है। वह भिन्न भिन्न रंग सूर्य किरणों में कहाँ से आया उसकी की कल्पना इस श्लोक में की गई॥ ९२॥

पुरः पश्चात्पार्श्वे प्रणमदमरान्तर्गत गजा—
ननापर्णाऽपर्णारमण तिलकार्धेन्दु किरणैः।
चतुः श्रोतःपूर्णं तव सविधुरत्नासनमये,
सवर्णं स्वर्णाद्रेः स्तवदमर सिन्धोः प्रति दिशम्॥९३॥

अये श्रीसीते!	हे श्रीसीता माताजी
पुरः पश्चात् पार्श्वे	आगे (पूर्व) पीछे (पश्चिम) दोनों बगल (उत्तर दक्षिण) सब तरफ से
प्रणमत् अमर अंतर्गत (विधुः)	प्रणाम करते हुये देवगणों के मध्य में पूर्ण कला-युक्त चन्द्रमा और
गजानन, अपर्णा, अपर्णारमण,	गणेश, पार्वती और शंकरजी हैं इन तीनों के ललाट में
तिलक अर्ध इन्दु किरणैः	तिलक रूप से आधा चन्द्रमाशोभित है अतएव इन चारों चन्द्रमा की किरणों के एक साथ चारों ओर से पड़ने से उस समय
सविधु रत्न तव सिंहासनम्	चन्द्रकांत मणियों से तथा अन्य अनेक मणियों से चित्रित आपका कनक सिंहासन

प्रतिदिशम् स्तवत्	चारों दिशाओं में, सबसे वंदनीया
अमर सिंधोः चतुः स्रोतपूर्णम्	देवनदी श्रीगंगाजी की चारों धारा से युक्त
सुवर्ण अद्रेः सवर्णं (प्रतिभाति)।	सोने के पर्वत सुमेरु के समान मालूम पड़ने लगता है।

र० प्र०—मातु सदा प्रणमैं तोहिं घेरि सबै सुर चन्द्र शिवा शिब शुण्डी।
शोभित चन्द्र कला तिनके शिर फैलि रही किरणावली खण्डी॥
शशिकान्त मणीन सिंहासन से कढ़ि अमृत धार ज्यो गंग अखण्डी।
लागै कुमार सुमेरु सिंहासन जाहि नमैं सुर भूपरि दण्डी॥

चन्द्रकान्त मणि पर जब चन्द्रमाकी किरणैं पड़ती हैं तों वह द्रवीभूत हो जाती है, उसमें से अमृत जल बहने लगता है—"चन्द्र कान्तोऽमृत स्रावी।" (अगस्तिमत १७)—'पूर्णेन्दु करसंस्पर्शादमृतं स्रवति क्षणात्। चन्द्रकांते तदाख्यातं दुर्लभं तत् कलौयुगे॥ (भोजराज कृत युक्ति कल्पतरु)॥ श्रीजानकीजी के सिंहासन में अनेकों चन्द्रकान्त मणियें लगी हैं। अतः जब चारों ओर से उस पर चन्द्र किरणैं पड़तीं हैं तो उसमें से चारों ओर से स्रोत-फूट कर बहने लगते हैं, उन्हीं स्रोतों की उपमा सुमेरु के चारो ओर बहनेवाली गंगाजी की 'सीता, अलकनंदा, चक्षु और भद्रा न म की धाराओं से दी गई है। सीता आदि चारों स्रोतों का वर्णन भागवत् ५। १७। ५ में इस तरह है कि—"तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिनामभिश्चतुर्दिक्षु शमभिस्पन्दन्ती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति, सीताऽलकनन्दा चक्षुर्भद्रेति।" सीता पूर्व में, अलकनन्दा दक्षिण में, चक्षू पश्चिम में और भद्रा उत्तर में बहती है। इस श्लोक में सिंहासन को सुमेरु गिरि के तुल्य कहा गया है॥ ९३॥

पुरोनम्रान्कम्रोत्तम रमण पत्पद्म सुषमा,
समुद्राऽऽमग्नं ते स्पृशतु हृदयं मा स्पृशतु वा।
परन्त्वेतानन्तस्तव चरण पीठं मणिमयं,
स्पृशत्येव स्तुत्ये प्रसरदनुरागोर्म्मि निकरम्॥ ९४॥

हे स्तुत्ये	सबसे स्तुति की जाने वाली हे माता श्रीसीताजी
कम्रोत्तम रमण पत्पद्म	नायकों में श्रेष्ठ आपके पति श्रीरामजी के चरण कमल की
सुषमा समुद्र आ (समंतात्)	परमा शोभा रूप अथाह आनन्द सिंधु में अच्छी तरह
मग्नम् ते हृदयं पुरः नम्रान्	डूबा हुआ आपका हृदय यदि सामने प्रणाम करते हुये देवताओं किंवा दासों को वात्सल्यता पूर्वक
स्पृशतु वा मा स्पृशतु	स्पर्श (ख्याल) करे अथवा तुच्छ या पर पुरुष दृष्टि से उन्हें न स्पर्श करै = दया दृष्टि से न देखे
परन्तु प्रसरत् अनुराग उर्मि	किन्तु बढ़े हुये वात्सल्यमय करुणा की लहरों के
निकरं मणिमयं तव चरणपीठ	समूह वाला रत्नजटित आपका यह सिंहासन अपने
अन्तः एतान् पुरो नम्राम्	भीतर इनसब सामने प्रणाम करने वाले दासों का
(अन्तः) स्पृशति एव ।	हृदय स्पर्श (दया पूर्वक इनके प्रेम को स्वीकार) करता ही है ।

र० प्र०—नायक श्रेष्ठ पती पदकंज महासुखमा सरिनाथहिं में।
प्लावित हीय सिये तुमको प्रणमैं सुर औ जन साथहिं में॥
जगवंदिते सीय सबैगुण दिव्य सिंहासन कान्तित हाथहि में।
भूरिभरे करुणा उमगाइ कुमारन पोखौ प्रगाथहिं में॥

साहित्य शास्त्र में रूपयौवन संपन्नगृहस्थ पुरुष को नायक कहा गया है। पति उपपति और वैसिक नामसे नायके तीनभेद कहे गये हैं। इनमें पति के पांच उपभेद हैं—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, शठ, और अनभिज्ञ। तथा उपपति के बचन चतुर और क्रिया चतुर दो उपभेद है इस प्रकार नायक के आठ भेद हुये इनमें अवस्थानुसार मानी और प्रोषितपति नाम से दो भेद बताये गये हैं। उनके उपभेद करने से तो नायिकाओं की तरह नायक के भी धीर, अधीर, खण्डित, उत्कण्ठित, कलहंतरित आदि उतने ही भेद प्रभेद हो सकते हैं जितने कि साहित्य

ने नायिकाओं के माना है। परन्तु मुख्य वही उपर्युक्त आठही माने गये हैं। इनमें उत्तम और अधम दो विभाग हैं, धीरोदत्तगुण सम्पन्न अनुकूल उत्तम और अन्य सात निकृष्ट या अधम नायक हैं। उत्तम नायक का लक्षण ऐसा कहा है—साहित्यदर्पण तृतीय परिच्छेदे—

त्यागीकृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही। दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्य शीलवान् ॥ ३४ ॥

अविकत्थनः क्षमावानति गंभीरोमहासत्वः। स्थेयान्निगूढमानः धीरोदात्तः दृढ़व्रतः कथित्: ॥ ३६ ॥

काव्य प्रकाशे सप्तम उल्लासे—

प्रकृतयोर्दिव्या अदिव्या दिव्यादिव्याश्च वीर रौद्र शृङ्गार शांतरसप्रधाना धीरोदात्त धीरोद्धत धीरललित धीरप्रशान्ताः उत्तमाधम मध्यमाश्च। ८२। १२।

दशरूपके द्वितीय प्रकाशे—नेता विनीतोमधुरस्त्यागदक्षः प्रियम्बदः। रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढ़वंशः स्थिरो युवा ॥ बुद्ध्युत्साह स्मृति प्रज्ञा कला मान समन्वितः। शूरो दृढ़श्च तेजस्वी शास्त्र चक्षुश्च धार्मिकः ॥

श्रीरामजी धीरोदात्तादि अनन्त दिव्य गुण सम्पन्न दिव्य अनुकूल नायक हैं। ऐसे नायक की प्राण प्रिया के सिंहासन की सर्वैश्वर्य प्रदान की महिमा तथा कृपा क्षमा आदि दिव्य गुणों को आपसे भी अधिक कहा गया है कारण कि अनेक नित्य मुक्त भक्त ही तो सिंहासन रूप से सेवा में हैं और "राम ते अधिक राम कर दासा" होते ही हैं ॥९४॥

दरोदचत्यंचद्द्रुम सुमचयो यच्चरणयो—
र्न सीम्नि स्थेमानं बहति सहसोन्नीत इतरैः।
सुनासानां तासामधिशयपुटैश्चुम्बित रुचो,
जयन्त्युर्वीजाते तव चरण पीठस्य चरणाः ॥९५॥

हे उर्वी जाते ! हे भूनन्दिनी माता श्रीसीता जी !
यत् चरणयोः सीम्नि जिन आपकी सखियों की चरण सीमा में = नख

दर उदंचति अंचत् द्रुम सुम चयः	किंचित् विकसित, पूजनीय अर्थात् देवलोक के कल्पवृक्ष, मंदार, पारियात और हरि चन्दनादि के पुष्पों का समूह अनेक देवांगनाओं द्वारा चढ़ाये जाते हैं वे पुष्प
स्थेमानं न बहति ।	स्थिरता को नहीं धारण कर पाते क्योंकि उन पुष्प चढ़ाने वाली अन्य सुन्दरियों से
इतरैः सहस्य	अन्य सुहागिनियों के कर कमल द्वारा झटपट बहुत शीघ्र ही वे पुष्प समूह
उन्नीता	हटा दिये जाते हैं अर्थात् उन चरण नखों की कोमलता विचार कर चढ़े पुष्पों को वहीं रहने नहीं देती हैं ।
सुनासानां तासां अपि	इस प्रकार की सुन्दर नासिका वाली उन सुन्दरियों के भी
शयः (शयः पाणिरित्यमरः) पुटैः	हाथ की अंजलियों से अर्थात् एक साथ दोनों कर कमलों से
चुम्बित रुचः तव चरण पीठस्थ चरणः जयन्ति ।	चूमा जाता है प्रकाश जिसका ऐसे श्रेष्ठ आपके सिंहासन के चारों पाये सदैव श्रेष्ठता को प्राप्त होकर विजय को प्राप्त हो रहे हैं ।

र० प्र०—उर्वि सुते ! तव दासि-पदोपरि नित्य सुरी सुर-पुष्प चढ़ावैं ।
तापर अन्य प्रपूजित पुष्प तिन्है ढँकि ते थिर नाहिं रहावैं ॥
यों वरनारि करांजलि चूमित तो पदपीठ प्रकाशि सुहावैं ।
सोहत दिव्य सिंहासनपाद कुमार लखे दुख दूरि परावैं ॥

इस श्लोक में सिंहासन की उत्कृष्टता का वर्णन करते हुये उसे उठाने वाली सुन्दरियों (सखियों, दासियों आदि की) कोमलता का वर्णन किया गया है ॥६५॥

तपस्तप्तं पद्मैः पयसि गलितं केवलहिमे,
दुरापा तत्प्राप्ता सुर पुर बधू पाणिपदवी ।

सुरद्रूणां पुष्पैरहह सहवासश्च विहितः,
पुटी भूतैः स्पृष्टास्तदुपरि भवती पीठ चरणः ॥९६॥

हे मातः श्रीसीताजी देवांगानायें जब आपके सिंहासन के पायों को पूजती हैं तब उस समय जो वे पारियातक, मंदार, संतानक, हरिचंदन, कल्पवृक्ष आदि के पुष्पों की पुष्पांजलियां देती हैं उनके हाथ सिंहासन के पायों का स्पर्श करते हैं, वे हाथ पूर्व जन्म में भूलोक में कमल थे। उन—

पद्मैः पयसि तपः तप्तम्
कमलों ने जल में कण्ठ पर्यन्त खड़े होकर तप करके पुण्य अर्जित किया है

हिमे केवलम् गलितम्
और हेमंत में पाला में संसार की एकमात्र परमप्रिय वस्तु शरीर की ममता त्याग कर गलगये। तब इतना कठिन तप करने के प्रभाव से

दुरापा सुर पुर वधू पाणि पदवी प्राप्ताः। *
देवांगनाओं के दुर्लभहस्त कमल का स्थान प्राप्त किया। अर्थात् जैसे तपस्वी तप करके देवता बनते हैं वैसे कमल भी तप करके देव बधुओं के कर पल्लव बन गये। परन्तु केवल तप से ही भगवत्प्राप्ति नहीं होती। भगवत्प्राप्ति का मुख्य साधन तो सत्संग है इसीसे वहाँ देव लोक में भी देवांगनाओं के

पुटीभूतैः सुरद्रूणां पुष्पैः अहहः सहवासः विहितः
अंजलियों में बन्द देववृक्षों के फूलों क साथ निरंतर का सत्संग बड़े भाग्य से उनको प्राप्त हुआ। अर्थात् देवस्त्रियां अपनी अंजलियों

---

* वारिमें बूड़ि जपैं रवि को सरि पंकज पाणिन को गहिवे को।

में नित्य देववृक्षों के फूलों को ले ले कर श्रीजू के पद त्राण एवं सिंहासनादि को पूजतीं हैं। उस समय वे देवियाँ पुष्पों को अंजलि में इसलिये बंद कर लेती हैं कि पुष्पों की सुगंधि उड़ न जाय उसी समय कर संपुट रूपी तपस्वी कमलों और देवपुष्पों का सहबास-सत्संग प्राप्त होता है। इस प्रकार जब कमलों ने इतना कष्ट तप सत्संग किया तब कहीं अर्थात् इतना करने के बाद आपके सिंहासन के पायों का स्पर्श प्राप्त कर सके। भाव यह कि श्री जू के सिंहासन की प्राप्ति भी परम दुष्कर उपाय साध्य है।

तत् च उपरि भवती पीठ चरणाः स्पृष्टाः।

र० प्र०—पूजैं सबै सुर नारि सिंहासनपाद सुरद्रुम पुष्पन साजी।
जल में धँसि कंज किये तप घोर जले हिम में सहि दुःख महा जी॥
ता फल ह्वै कर देविन के सत्संग लहे सुरपुष्प समाजी।
जा फल सीय सिंहासनपाद 'कुमार' छुवैं प्रणवैं मन राजी॥९६॥

श्रियो लीला हर्म्यात्पदकमल उन्मीलति मनाङ्
निमीलत्यालीनामुषसिकरनालीक निकरः।
निमीला कीलालाशय शतदलैर्यत्कुवलयै—
र्द्रुतं मुक्ता युक्तं तदपि शशिकृत्यं विमृशताम्॥९७॥

उषसि लीला हर्म्यात् श्रियः पदकमले मनाक् उन्मीलति। आलीनांकरनालीक निकरः निमीलति।

प्रातःकाल में रंग महल से अन्य कुञ्जों में जाने के लिये जैसे ही श्रीजानकीजी के दोनों चरण कमल किंचिन्मात्र ही दरवाजे के पर्दे के बाहर निकलने के लिये खुलते हैं उसी क्षण सखियों के हस्त रूपी कमल समूह बन्द अर्थात् सम्पुटित हो जाते हैं। तात्पर्य

यह कि पद नखाग्र के दर्शन मात्र से सखियाँ, हाथ की अंजली जोड़ जोड़कर प्रणाम करने लगतीं हैं। यहाँ कमल दर्शन से कमल का सम्पुटित होना अद्भुतता है। आपके पद और सखियों के हाथ कमल हैं।

कीलाल आशयैः शतदलैः यत् कुवलयैः निमीला मुक्ताः

स्नान कुंज की पुष्करणी के जल में रहनेवाले सौदलोंवाले जो रात्रि में खिलनेवाले लाल श्वेत कमल (कुमुद-कुई) हैं वे सब दिनारंभ को जानकर यद्यपि सर्वथा संपुटित हो जाना चाहती थी परन्तु वहाँ आपके जाते ही वे सब कमलिनी विकसित हो गयीं खिल गईं। (यह दूसरा आश्चर्य है)

तत् अपि शशि कृत्यम् (इति) विमृशताम् तत् कृत्यम् युक्तम्।

इस अद्भुतता का कारण भी नख रूपी चन्द्रमा का कर्तव्य है ऐसा विचार लेने पर उन कुमुदों को दिन में खिलना रूपी कर्तव्य उचित ही है। अर्थात् वे कुवलय आपके पद नख चन्द्र को देखकर विकसित हो रहे हैं अतः यह कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं हुई ॥

र० प्र०—कढ़ि के रति भौन ते चाहत हैं जिय दूसरे कुञ्जन पैठन काहीं।
जब प्रात खुलैं सिय के पद कंज सखी कर कंजनि में मुँदि जाहीं॥
शतपत्र कुमोदिनि देखि सिया नख चन्द्र नहानसरे विकसाहीं।
अति अद्भुत भाव कुमार हिये गुनि नित्य नमै सिय तो पद माहीं॥

इस श्लोक में श्रीसीताजी के पद को कमल और पद नख को चन्द्रमा कहकर आपके श्रीचरणों में रहकर परस्पर दो विरोधियों की भी निर्वैरता देखी गई ॥६७॥

समस्तो विन्यस्तस्तव चरणयोर्प्रेम रसिकै—
र्भरोऽमूभ्यां मूल्योज्झितमणि निषद्योपरि पुनः।

तवात्मीयाम्नायांघ्रिषु च त इमे दुर्वह तमं,
पुमर्थानां भारं ददति नमतो मूर्द्धनि वलात् ॥९८॥

प्रेम रसिकैः	प्रेम भक्ति को पाकर आनंद में मग्न रहनेवाले
	श्रीसीताजी के भक्तों ने अर्थ धर्म काम मोक्षादि
समस्तः भरः तव चरणयोः	के योग क्षेमात्मक अपना सम्पूर्ण भार-बोझ
विन्यस्तः ।	आपके चरणों में समर्पण कर दिया अर्थात्
	निश्चय कर लिया कि हमारे अर्थ धर्मादि समस्त
	पुरुषार्थ इन्हीं श्रीचरणों के आधीन हैं ।
पुनः अमूभ्याम्	पुनः आपके इन पदों ने भार से व्याकुल होकर
	अपना समस्तभार—
मूल्य मणि निषद्य	पूर्ण रूप से=एकदम से=सर्वथा माणमय सिंहा-
	सन के
उपरि उज्झितः । तथा	ऊपर डाल दिया । उस सिंहासन ने भी भारसे
	व्याकुल होकर अपने संपूर्ण भार को
आम्नाय आत्मीय	चारों वेद रूप अपने चारों
अंघ्रिषु (विन्यस्तः) ते	पायों के ऊपर डाल दिया और वे उन चारों
	फलों से संपन्न
इमे (पादाः)	ये चारों पाये भी भार से घबरा कर अर्थादि चारों
पुमर्थानां दुर्वहताम्	पुरुषार्थों-फलों के अत्यंत भारी=गंभीर इस
भारं नमतः मूर्द्धनि	बोझ को प्रणाम करनेवालों (भक्तों के)
	शिर पर
बलात् विन्यस्तः ।	न चाहने पर भी ज़बरदसी डाल-पटक देते हैं ।

र० प्र०—योग औ क्षेम चहूँ फलभार सबै सिय के पद प्रेमिन कीन्हे ।
ता पद को गुरुभार महामणिभूषित स्वर्ण सिंहासन लीन्हे ॥
सो अतिभार ऋगादि चहूँ श्रुति पाद बने शिरधारत चीन्हे ।
पै घबराइ चहूँ फलभार कुमार नमैं तिनपै मढ़ि दीन्हे ॥

श्रीजानकीजी के बिराजने के सिंहासन के प्रणाममात्र से अनइच्छित भी चारों पदार्थ सुलभतासे प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु श्लोकान्त में 'बलात्' कह कर जनाया कि भक्तों को वे चतुर्वर्ग बेगार के बोझवत प्रतीत होते हैं ॥ ९८ ॥

अयः स्पर्श स्पर्शात् कनकमिव मुक्ता कवचितं,
पद स्पर्शात् पीठं तव भवति माणिक्यमनघम् ।
विमुक्तं यन्मुक्ता मयमिव पुनर्भाति स भवत्
पदाभ्यां विश्लेषाद्धवलिम विशेषोऽस्य वरदे ॥९९॥

हे वरदे !	हे वरदान देनेवाली माता श्रीसीताजी !
स्पर्श स्पर्शात् अयः	पारसपत्थर के छू जाने मात्र से जैसे लोहा
कनकं इवमुक्ताकवचितम्	सुवर्ण हो जाता है उसीतरह श्वेत मोतियों से जड़ा हुआ
तव पीठं तव पद स्पर्शात्	आपका सिंहासन भी आपके चरण लगते ही
अनघं मणिक्यं भवति	स्वच्छ अरुणमणि का हो जाता है। अर्थात् आपके चरण तलवों का लालरंग श्वेत मोतियों में प्रतिम्बिबित हो जाने से लाल हो जाता है।
पुनः भवत्पदाभ्यां त्यक्तम्	और फिर जब आपके चरण से त्याग दिये जाते हैं अर्थात् आप सिंहासन से उतर जाती हैं तब उस समय
स पुनः मुक्तामयं इवभाति	वह सिंहासन पुनः श्वेत मोतियों से जटित के समान पूर्ववत् ही मालूम पड़ने लगता है। परन्तु वे मणियां पुनः मोती नहीं हो जाती किंतु वह सफेदी तो
भवत् पदाभ्यां विश्लेषात्	आपके श्रीचरणों के वियोग से है
अस्य यत् विशेषः धवलिम्	इस सिंहासन में जो एक खास सफेदी-पांडुरता-ज़र्दी
भवति ।	आजाती है। वह प्रेम वियोग में ज़र्दी छा जाती

है । जैसे स्वर्ण पुनः लोहा नहीं होता वैसे वह अरुण मणिक्य पद्मराग-पुनः मुक्ता नहीं होता ।

र० प्र०—वरदे ! जिमि पारसके परसावत लोह सुवर्ण बनैछन ताही ।
तव पाँवधरे मुकुता जड़े पीठ सुमोद की लाली भरै अँगमाहीं ॥
सियजू ! पुनि जौ तजिदेहु सिंहासन पाण्डुर वर्णबने पलमाही ।
अति दुःख वियोग कुमार लहे मुख मुक्तन श्वेत भये कुम्हिलाहीं ॥

'तद्गुणालंकार' द्वारा श्रीजू के सिंहासन की प्रभा का वर्णन है "तद्गुण निजगुण छांडिकै संगति को गुण लेइ । सिय पद परि मुकुतान ज्यों पद्मारग छबिदेइ ।" ॥ ९९ ॥

सहस्रेणाप्यक्ष्णां तव चरणयोर्वीक्षण विधा—
वतृप्तः संसद्यामिन रमणि दृक् संभवति ते ।
महेन्द्रो मायाभिः पुरु बपुरभूत् हृत्सुचवहँ—
स्त्वदंघ्रो संक्रान्तौ बहिरपि गिरां पश्यति बहिः ॥१००॥

हे इन रमणि श्रीसीते !	हे सूर्यकुल के सूर्य प्रभुराजा श्रीरामजी की राज महिषी जू !
संसद्यां तव चरणयोः	सिंहासन पर स्थित आपके युगल चरणों को
सहस्रेण अक्ष्णां अपि	अपने हज़ार नेत्रों से भी
वीक्षण विधौ अतृप्तः	देखते हुये संतुष्ट न होने पर (आपकी वात्सल्यता से ढीठ होकर)
*महेन्द्र = चरणयोःवीक्षणविधौ	इन्द्र ने [लज्जा से सतत्काल अपने ही] चरणों को देखने वाले—
ते दृक् संभवति ।	आपके नेत्रों से सूक्ष्म चक्षुरिन्द्रिय बन कर प्रवेश कर लिया कि आपके नेत्रों द्वारा सिंहासन पर स्थित श्रीचरणों को निरन्तर देखता रहूँगा,

* इन्धोहि नामैष यो दक्षिणोऽक्षन्पूरुषस्तमिन्धं संतमिन्द्रमित्याचक्षते ॥

परन्तु जब इतने पर भी तृप्त न हुआ तो

† मायाभिः पुरु बपुः अभूत् योग शक्ति से बहुत शरीर वाला बन गया। अनेक शरीर वाला हो जाने से इनके अनेक हृदय हो गये तब

हृत्सु त्वत् अंघ्रो अपने उन प्रत्येक हृदय में आपके चरणों को

वहन् (सन्) अतृप्तः धारण करते हुये भी जब तृप्ति नहीं मिली तब

गिरां वहिः त्वत् अंघ्रीसंक्रांतौ वाणी से भी परे आपके सिंहासन में इन्द्रनील-मणि रूपसे बैठ कर

वहिः अपि पश्यति। बाहर से भी देखने लगा अर्थात् सिंहासन की मणियों में जो पद का प्रतिविंव पड़ता है वही मानों इन्द्रका हृदय में और प्रत्यक्ष बाहर भी दर्शन करना है।

र० प्र०—देखि सिंहासन पै सियके पद इन्द्र न तृप्तिलहे सहसाँखी।
मा ढिग ढीठ लखैं पद आपन कीन्ह प्रवेश सिया दृग माँखी॥
तौहू न तृप्त सुयोगबलै बहु रूपबने हिय श्रीपद राखी।
पाई न तृप्ति कुमार तबौं मणिरूप सिंहासन में जड़े आँखी॥

परमैश्वर्य मान होते हुये भी इन्द्र कैसी भक्ति श्रीचरणों में करते हैं यही यहाँ बताया गया है॥ १००॥

सुमोल्लोचस्यूतायतसित सहस्रच्छदलता,
सहस्रं संक्रान्तं मणिमय भवन्मण्डप भुवि।
सहस्रं शेषाणामिव धरणिमूलोन्नत शिरः,
सहस्राणां स्तोतुं तव पदमिदं कौतुकनिधे॥१०१॥

---

† रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्यहरयः शता दश॥
(ऋग्वेद मंडल ६ सूक्त ४७ मंत्र १८)

हे कौतुक निधे ! हे आश्चर्य के समुद्र रूपिणी श्री सीताजी !
सुम उल्लोच स्यूत फूलों से चित्रित या सजे हुये वितान में लगी हुई
सित आयत सहस्रच्छदलता हजार पँखुडियों वाले श्वेतभू कमल की जो लतायें
उन लताओं में लगे हुये जो

सहस्रम्, संक्रातम् हजारों श्वेत कमल उनका जो हजारों प्रतिबिंब
भवत् मणिमयमण्डप भुवि आपके रत्नखचित दालान की गच्ची पर पड़ता
है वह ऐसा मालूम पड़ता है कि

तव इदं पदं स्तोतुम् आपके इस पदपद्म की स्तुति करनेके लिये मानो
धरणिमूल उन्नत शिरः पृथ्वी के नीचे से ऊपर को शिर उठाये हुये
शिरः सहस्राणां शेषाणाम् हजार शिरवाले हजारों शेषनागों का
सहस्रम् (आगतम्)। हजारों झुण्ड आया है। यद्यपि यह दूसरों के
लिये आश्चर्य है पर आपतो सारे ब्रह्माण्डों के
आश्चर्यों को प्रगट करनेवाली है अतः आपके
लिये कोई आश्चर्य नहीं जो हजारों शेष स्तुति करें।

र०प्र०—महिकंज सुश्वेत सहस्र दलीन लता जटि पुष्पित चित्र बितानै।
तिनसों प्रतिम्बिबत रत्नमयी महि ता उपमा कबि यों जियजानै॥
कढ़ि शेष सहस्र सहस्र फणानि निकासि मनौ सिय स्तुति ठानै।
अति कौतुकमयि सियको यह कौतुक चित्र विचित्र कुमार न मानै॥

भूकंज का पुष्प भी जलकंज के समान होता है पर जलकंज सरीखे नाल मात्र न होकर लता होती है और लताओं में अनेक कंज खिलते हैं। मणिमय मंडप में चँदोवा में मोतियों की झालर और श्वेत भूकंजों की जो मालायें लगी हैं वे नीचे मणिमय भूमि में प्रतिबिम्बित हो रहें हैं उन्हीं प्रतिबिम्बों का वर्णन 'उत्प्रेक्षालंकार' द्वारा अनेक रूपधारी शेषरूप से किया गया है। उत्प्रेक्षाऽलंकार का लक्षण।

"उत्प्रेक्षोन्नीयते यत्र हेत्वादिर्निर्नितं विना।" (चन्द्रलोक) ५।२६,
यहाँ उक्तविषया बस्तूत्प्रेक्षा अलंकार है॥ १०१॥

मूल—अहो पूर्वापूर्वामर गुरु युगं तेंऽघ्रि युगलं
न शक्नोतिस्तोतुं कलियुग जनैः काऽत्र गणना।

प्रलापं श्रुत्वा मे तदपि नखकोटीन्दु शकल—
प्रभाजाल व्याजाद्धसति मुदितं बत्सलमिदम्॥१०२॥

हे सति ते अंघ्रियुगलं स्तोतुम्	हेसती शिरोमणि श्री सीताजी आपके दोनों चरणों की यथार्थ रूप से स्तुति करने में
पूर्व अमर, अपूर्व अमर	जेठे अमर दैत्य और लहुरे अमर देवता इन दोनों वर्गों के
गुरु युगम् न शक्नोति।	गुरु शुक्र और वृहस्पति बड़े भारी कवि एवं वक्ता होने पर भी समर्थ नहीं हो सकते। तब भला
कलियुग जनेः अथ का गणना।	कलियुगी प्राणी-मेरी इस विषय में कौन गिनती है अर्थात् मैं किस गिनती में हूँ।
तदपि मे प्रलापं श्रुत्वा इदम्	तो भी मेरी बकवाद को सुनकर यह सिंहासन
नख कोटि इन्दु शकलम्	नखों के अग्रभागरूप जो चंद्रमा के टुकड़े-अर्द्ध-चंद्र हैं इनकी प्रभासमूह सिंहासन के मणियों में चमक रही है उस
प्रभाजालं व्याजात् हसति	प्रभा समूह के बहाने से (आपका सिंहासन) हँसरहा है
मुदितं (भवति)	और प्रसन्न हो रहा है। यह हंसना और प्रसन्नता वास्तव में मेरे कहे गये इस चामर स्तोत्र को सुनकर ही है। अतः
इदम् वात्सल्यम् अहो!	इस वात्सल्यता-कृपाकोधन्य है। कृपाकी जैजैकार।

र०प्र०—श्रुतिशारद शेष बृहस्पति शुक्र सिया गुणगाइ न पार लहैं।
कलि तापित जीवन हा विषयी गिनती केहि माहिं कुमार अहैं॥
सुनिके मम भूरि प्रलाप सिंहासन हास प्रभा मिस ठानि रहैं।
हम मानत धन्य तऊ निजको सिय की करुणामयि दृष्टि चहैं॥

इस श्लोक में यह व्यंजित किया गया है कि मेरे प्रलाप को सुनकर यद्यपि आप मौन हो गईं हैं परन्तु यह सिंहासन आपकी प्रसन्नता प्रगट कर रहा है।

नखों का श्वेत प्रतिम्बिब सिंहासन में झलकना उसका हँसना है। साहित्य शास्त्रियों ने हास्य का श्वेत रंग माना है—"यशसि धवलता वर्ण्यते हासकीर्त्तौ ।" (साहित्य-दर्पण) "सूर्येन्दु कांत निर्मोक मन्दारद्रु हिमाद्रयः। हिमहास मृणालानि स्वर्ग-क्षेमरदाभ्रकम् ।।" (रसगंगाधर) इसी से नखाग्र भागों के श्वेत प्रतिबिम्ब को हास्य की कल्पना गई है ॥ १०२ ॥

मनोभू बामाक्षी स्मय हर मृगाक्षी परिषदो—
दृशो सक्तानक्तं दिवमवनिजे त्वत्प्रियदृशोः ।
तयोस्तावद्भावस्तव नयनयोस्त्वन्नयनयो—
स्तवैवांघ्रोस्तस्मान्ममहृदयमत्रैवरमते ॥ १०३ ॥

हे अवनि जे !	हे भूनन्दिनी श्रीसीताजी !
मनोभू बामाक्षीस्मयहर मृगाक्षी परिषदः दृशः नक्तं दिवं त्वत् प्रियं दृशोः सक्ताः ।	कुटिल कटाक्षशालनी कामपत्नी रति के गर्व हरनेवाली मृगनैनी सुंदरी आपकी सखियों के समूह की दृष्टि रात दिन आपके प्रियतम श्रीराम-भद्रजू के नेत्रों के दर्शन में लगी रहती हैं अर्थात् देखा करती हैं कि कब किस कैंकर्य की आवश्य-कता पड़े। अतः "प्रभुमुख सकल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपालु हमहि कुछ कहहीं ॥"
	और श्रीरामजी के
तयोः तव नयनयोः तावत्भावः	वे दोनों नेत्र आपके नेत्रों में उसी भाव-प्रेम से आसक्त रहते हैं और
त्वत् नयनयोः तव अंघ्रेः	आपके दोनों नेत्र लज्जा गंभीरता से आपके चरणों को हरदम देखा करते हैं।
तस्मात् मम हृदय अत्रैव रमते ।	इसीलिये मेरा हृदय आपके चरणों में ही रमता है।

र० प्र०—रतिमान विमर्द्दिनि एणी दृशी सिय दासी सखीन समूह सबै।
सिय प्राणपती दृग कंजनि कौं निरखैं नित आयसु देहिं कबै ॥

रघुनन्दन नेत्र गड़े सिय के मुख चाहत भाव कुमार फबै।
सिय नैन लगे लजि पाँय निजै तिन पाँयन में मम प्राण अबै॥

इस श्लोक में भगवान् के समान भगवद्रूप भी कहा गया है। भगद्रूप के लिये जब पूछा जाता है कि "किमात्मिका भगवद्व्यक्तिः ?" तो उत्तर मिलता है कि "यमात्मको भगवान् तमात्मिका भगवद्व्यक्तिः।" अतएव जैसे परमात्मा वेदान्त से वेद्य एवं प्रेम से प्राप्य हैं तथा सर्वोपरि हैं वैसे ही आपके चरण कमल भी हैं अतः इन्हीं चरणों का चिंतवन करना चाहिये॥ १०३॥

चिदानंन्दा मंदस्मित दमित राकेन्दु शतकां,
मुकुन्दाङ्के लग्नां घुसृण रसमग्नाम्बरधराम्।
स्फुरन्नासा मुक्तामुरसि नवहारेण मधुरां
तड़ित् कांची कांचित् स्मरत चतुराश्चारुचरणम्॥१०४॥

हे चतुरा=भक्ताः	भक्ति करने में प्रवीण हे भगद्दासो !
चिदानन्दां मन्दस्मित	वेदान्तवेद्य कार्य कारण से परे ज्ञानानन्द स्वरूपा और जो लीला विग्रह में अपने मन्द मुसुकान से
राका इन्दुशतकाम्	पूर्णिमा में उगनेवाले षोड़श कलापूर्ण चन्द्रमा के सैकड़ों झुण्डों को
दमितं=पराभवंनीतम्	जीत लेती हैं=लज्जित कर देती हैं, जो
मुकुन्द अङ्के लग्नाम्	मोक्षदाता श्रीरामजी की गोद में सदा लगी रहती हैं, जो
घुसृण रसमग्न अंबरधराम्	केशर के रंग में भीगे-रँगे वस्त्र को पहिननेवाली हैं। जिनकी
नासा स्फुरत् मुक्ताम्	नासिका के बेशरि में मोती शोभित है, जो
उरसि नव हारेण	उरस्थल पर नवीन-प्रकाशमान हार धारण किये होने से
मधुराम्	अत्यन्त मनोहर लग रहीं हैं और जिनकी

तड़ित् काञ्चीम्	कटि में बिजली के समान करधनी प्रकाशित है ऐसी श्रीसीता नाम्नी अद्भुत रूपा
कांचित् चारु चरणं स्मरत् ।	किसी देवी के सुन्दर=समस्त फल देनेवाले चरणों का स्मरण करो । यही श्रीचरण-स्मरण ही यथार्थ चतुरता है ।

र० प्र०—सच्चित् आनंद रूप अनूपम विग्रह दिव्य अनुग्रह हेतू।
पूर्ण शशीमुख रामकुमार सु अंकलगी रहतीं अति हेतू॥
घ्राण समुक्त औ मुक्तन हार लसे रंग केशर बस्त्र सहेतू।
मधुरी छवि किंकिणीबिद्युत श्रीपदपद्म लगैं चित चातुरी हेतू॥

इस श्लोक में संक्षेप में श्रीसीताजी के स्वरूप शृङ्गार का वर्णन करके चारु शब्द से चरणों की महिमा कहा कि यदि सम्पूर्ण श्रीविग्रह का ध्यान नहीं कर सकते तो चरण मात्र का ही ध्यान करो, ये श्रीचरण ही चतुर्वर्ग प्रदायक है। इनसे लगन नहीं तौ बिरथा दण्ड कमण्डल करवा ॥ १०४ ॥

दुकूलेनाचूड़ामणि पिहितमानूपुरमहो,
स्वरूपन्तेऽनन्ते चरण युगलं मुक्तमतुलम् ।
नख ज्योति स्रोतः सुर मुकुट रत्नांशु निकरात्,
परा वृत्तं रत्नांशुकमिव विधत्ते पुनरिदम् ॥१०५॥

हे अनन्ते !	हे अपार शक्ति एवं असंख्यदिव्यगुणवाली माता श्रीसीताजी !
ते स्वरूपम्	आपका सच्चिदानन्दात्मक दिव्यमंगल विग्रह
आचूणामणि आनूपुरम्	शिर की वेणी से लेकर पाँव की बिछिया पर्यन्त इस
दुकूलेन पिहितम्	दिव्य पाटांवर-चद्दर से ढँक गया है परंतु दासों को दर्शन देने के लिये
अतुलं चरणयुगलम् मुक्तम् ।	महाप्रभाववाले ये दोनों श्रीचरण खुले हैं। यद्यपि खुले हैं तो भी

नख ज्योति स्रोतः	नखों की अरुण प्रभा—प्रकाश का प्रवाह और प्रणाम करते हुये
सुरमुकुट रत्न अंशुनिकरात्	देवगणों के मुकुट में लगी हुई मणियों की श्वेत किरणों से
इदं पुनः परावृतम् रत्नअंशुकम् इव विधत्ते ।	ये श्रीचरण पुनः ढंक जाते हैं । इस समय ये पद चमकीले गुलाबी वस्त्र की शोभा धारण करते हैं । अर्थात् नख और सुरमुकुट मणि की प्रभा से आच्छादित चरण मानों पुनः गुलाबी वस्त्र से ढंक गये हैं ऐसा मालूम पड़ने लगता है

र० प्र०—दिव्य अनन्त गुणे ! सिय ! अँग ढँके पट वेणिसों नुपूर लौं ।
भक्त लखै हित पाँव खुले तऊ रक्त प्रभा नख के उरलौं ॥
प्रणमैं तिन देवन क्रीट प्रभा मिलि सोहै गुलाबी प्रभा-कुर लौं ।
अद्भुत बस्त्र ढंके नख यों भ्रमि दास कुमार नमैं धुर लौं ॥

इस श्लोक में "उत्प्रेक्षा अलंकार" द्वारा चरण नख की प्रभा का वर्णन है कि नख के अग्रभाग की प्रभाश्वेत और नख के मध्य भाग की प्रभालाल तथा सुरमुकुटस्थ रत्नों की प्रभा श्वेत और तीनों की संमिलित प्रभा गुलाबी रंग की हो जाती है ॥ १०५ ॥

शरज्ज्योत्स्ना जालोज्ज्वलमपि दुकूलं विजयते,
यदंगानां संगात् सपदि रजनी रंजित मपि ।
पुनर्यस्या हास्यैरमृत सरसीकेन सदृशं,
श्रियः पश्याम्यस्याश्चरण किरणैर्विश्वमरुणम् ॥१०६॥

शरत् ज्योत्स्नाजालउज्ज्वलम् दुकूलम् अपि विजयते	शरत् पूर्णिमा के प्रकाशसमूह के समान उज्ज्वल वस्त्र भी श्रीजीके समान ही सर्वाधिक शोभा दे रहा है
यत् अंगानां संगात्	क्योंकि श्रीजी का वह रक्त वस्त्र श्री-अंग के साथ

सपदि रजनी रंजितं अपि	तुरन्त ही (धारण करते ही) हल्दी से रंगा हुआ पीत भी मालूम पड़ने लगता है ।
पुनः यस्याः हास्यैः	पुनः श्रीजी के प्रसन्नतामय हँसने से वही वस्त्र
अमृत सरसी	अमृत का तालाब अर्थात् अमृतमय
क इन सदृशम् (भवति)।	नक्षत्राधीश चन्द्रमा के समान श्वेत हो जाता है
पुनः अस्याः श्रियः चरण	फिर इन्हीं श्रीसीताजी के पद कमल की लाल
किरणैः (अहम्)	किरणों के कारण मैं
विश्वम् अरुणं पश्यामि।	इस विश्व को लाल वर्ण का देखता हूँ ।

र० प्र०–निशि शारदी में बिकसे मुखचन्द्र त्यौं श्वेत सुवस्त्र सिया तनुधारैं।
मिलि सो अँग कान्तित चम्पकवर्ण पै हास्य प्रभा सुसुधाहिं बगारैं॥
उडुभूषित चन्द्र समान लसैं तिनमें जो जड़े बहु सीप कुमारैं।
पदकंज प्रभा महि लाली रचै यहिते जग को हम लाल निहारैं॥

"पादोऽस्य विश्वाभूतानि" (शु. य ३१ । ३) इस श्रुति का अनुसंधान करते हुये इस श्लोक में 'तद्गुणालंकार' से अंग प्रभा, प्रधानतया पदनख प्रभा का वर्णन किया गया है ॥ १०६ ॥

सुधा वीची नीची करण निपुणापाङ्ग करुणा—
तरङ्गैरुत्तुङ्गैश्चरण शरणं सिञ्च कृपणम् ।
मम प्रज्ञा वापी प्रभव नव काव्याम्बुजवने,
पदन्यासं कुर्य्याः सरसिज निवास-व्यसनिनि ॥१०७॥

हे सरसिज निवास व्यसनिनि !	हे कमल वन विहार शीले श्रीसीते !
सुधा वीची नीची करण	अमृत की तरंगों को तुच्छ बनाने=नीचा दिखाने में
निपुण अपांग करुणा	प्रवीण आपके कृपामय कटाक्ष की
उत्तुङ्गैः तरंगैः	अत्यंत ऊँची उठी हुई (बढ़ी हुई) लहरों से
चरण शरणम् (माम्)	आपके चरणों की शरणमें आये हुये मुझ
कृपणम् सिंच ।	अज्ञानी साधन हीन दीन को सींचिये ।

मम प्रज्ञा वापी प्रभव
नव काव्य नव अम्बुज वने
पद न्यासं कुर्य्याः ।

और मेरी बुद्धि रूपी बावड़ी से उत्पन्न हुये
नवीन काव्यरूपी नवीन विकसित कमल के वन में
पदार्पण कीजिये = आइये विहार कीजिये अर्थात्
मुझ दीन पर कृपा करके मेरे इस स्तोत्र को
वात्सल्य भाव से अंगीकार कर लीजिये ।

र० प्र०–तुच्छ लगै सब अमृत बीचि सिया करुणा की कटाक्ष जो हेरैं ।
अति साधन हीन मलीन सुदीन कुमार भयो पद पंकज नेरैं ॥
करुणामृत मो बुधि वापी भरौ तो कढ़ै नव काव्य सुकंज घनेरैं ।
हमपै ढरि सीय पदार्पण कै करकंज कृपा करि शीश मों फेरैं ॥

"यो वा एतदक्षरमविदित्वा गार्ग्यस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः ।" (बृ० ३।८।१०) इस श्रुति के अनुसार ब्रह्म तत्व के न जानने से मैं सदैव कृपण – दीन हूँ, अपने से मैं अपना उद्धार नहीं कर सकता अतः प्रार्थना की गई है कि माता श्रीसीताजी अपनी कृपा से मेरी स्तुति को अंगीकार करलें तो मैं अनायास ही तर जाऊँ ॥१०७॥

बितानाधस्तानाः शत दशकमुक्ता मय लताः
सभायामाभांति त्रिदशसरि दोघो इव तव ।
प्रभाभिर्वीचीभिस्तव नखमयूखामृतनिधेः,
विलोलैः कल्लोलैः सहपरि मिलन्त्यो रसनिधे ॥१०८॥

हे रसनिधे ! (रसोवैसः रसो ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनंदी भवति)
वितान अधस्तानाः दशशतक मुक्तामय लताः
प्रभाभिः वीचीभिः तवनख मयूख अमृतनिधेः
विलोलैः कल्लोलैः सह
परिमिलन्त्यः त्रिदश सरित्

हे ब्रह्मानंदात्मिके–आनंद की खजानारूप श्रीसीता जी ! आपके सभामण्डप के
चँदोवा के नीचे जो हजारों
मोतियों की झालरैं लटकती हैं वे अपने
प्रभारूपी तरंगों से आपके नख के
प्रकाश रूपी अमृतभरे हुये समुद्र के
चंचल तरंगों से
सर्वथा मिलते हुये श्वेत पर्वत से गिरती हुई गंगा

ओघ इव अभान्ति।

जी की अनेकों धारा के समान हैं अर्थात् प्रत्येक झालर एक एक गंगाधार वत् दीख पड़ती है।

र०प्र०—परमानँद दायिके मुक्ति प्रदे तव मण्डप में शत मुक्तन झूलैं।
नख दिव्य प्रभा सियकी तिनमें जनु सिन्धुसुधा सुतरंगित कूलैं॥
अति चंचल सो लहरी मिलिकै जनु देवनदी बहु धारन हूलैं।
बहु गंग तरंगित मानो कुमार लतामुकुतान की दिव्य अतूलैं॥

"उत्प्रेक्षा अलंकार" द्वारा पद नख प्रभाका वर्णन गंगासागर तीर्थरूप से इस श्लोक में किया गया है। श्वेत पर्वत (हिमगिरि) वत् वितान, गंगा प्रवाह वत् मोतियों की झालरैं और समुद्र सम पदनख की प्रभा समूह की कल्पना की गई है॥ १०८॥

सुराः सर्वे सर्वास्तव चरणमूले सुरतरो—
स्त्वमासीनामूलेऽनुचितमितिमत्वा सुरतरुः।
भवन्मंचाधस्ताद्भुवि विविधिरत्नेषु बहुधा,
विशत्प्रायश्चित्यं चरति बहुरूपैर्परतरे॥ १०९॥

हे परतरे !	हे परमेश्वरी श्री सीतजी !
सर्वे सुराः खर्वाः (संतः)	सम्पूर्ण देवता लोग तो तुच्छ=छोटा रूपवना का अर्थात् दासानुदास होकर
तव चरणमूले तिष्ठन्ति	आपके चरणों के नीचे सिंहासन के नीचे खड़े रहते हैं
❀ त्वम् सुरतरोः मूले आसीना	और आप कल्पवृक्ष के नीचे सिंहासन पर बैठतीं हैं
सुरतरुः इति अनुचितं मत्वा	कल्पवृक्ष ने अपने लिये इसको अनुचित मानकर
भवत् मंच अधस्तात् भुवि	आपके सिंहासन के नीचे की भूमि=गच्ची में जो
विविधि रत्नेषु बहुरूपैः	अनेक रत्न जटित हैं उन रत्नो में अनेक रूपों से

❀ अयोध्या नगरे रम्ये रत्नमण्डप मध्यगे। स्मरेत् कल्पतरोर्मूले रत्न सिंहासन शुभम्॥ तन्मध्येऽष्ट दलं पद्मंनाना रत्नैश्च वेष्टितम्॥ (रामस्वराज)

विशन् (सन्) प्रवेश करके मानों अपने घोर अपराधका
बहुधा प्रायश्चित्तं चरति। बड़ा दुस्तर प्रायश्चित्त कर रहा है।

र० प्र०—सुर शम्भु अजादिक दास बने सिय के पद प्रांत परे रहते हैं।
कल्पतरू तर दिव्य मणीन सिंहासन सीय धरे रहते हैं॥
तिसु ऊपर वैठति सीय परात्परि भूमिहिं रत्नजड़े रहते हैं।
सहते पदघात कुमार सखीन पराछित पाप करे रहते हैं॥

सिंहासन के निकट की मण्डप-भूमि की निर्मलता का वर्णन करते हुये बताया-गया है भूमि जटित मणियों में छाया पड़ना अनेक रूप धरना है। समीपवर्ती दास दासियों सखियों आदिका पांव उन परछाहियों पर पड़ना ही मानों नित्य सबका पद प्रहार सहकर कल्पवृक्ष का कठिन प्रायश्चित्त करना है। यहां "ललित असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा" अलंकार हैं॥ १०६॥

कपिद्वारा वारामुपरि जलधेः सेतु तरणि—
र्यथोदारा धाराधर रुचिर रामेण रचिता।
मयाद्वारा नारायणविधुमुखीयं नुतिरियं,
भवोद्धारा साराश्रय हृदय रामेण विहिता॥११०॥

यथा धाराधर रुचिर रामेण कपि द्वारा जलधेः वारां उपरि उदारा सेतु तरणिः रचिता। — जैसे सजल मेघ के समान सुन्दर वर्णवाले श्रीरामजी ने बानरों के द्वारा समुद्र के जल के ऊपर विशाल एवं श्रेष्ठ पुलरूपी जलयान की रचना किया था उसी प्रकार

आश्रय हृदयरामेण रामेण मया द्वारा नारायण (नारं=ज्ञानं, अयनं स्थानं यस्य स, तस्य) विधुमुखी इयम् नुतिः * विहिता। इयं नुतिः — सबके आधारभूत हृदय में रमण करनेवाले अर्थात् अन्तर्यामी श्रीरामजी ने प्रेरणा करके ज्ञान स्वरूपी श्रीरामजी ने अपनी चन्द्रवदनी पत्नी श्रीजानकीजी की यह स्तुति रचा है (रचवाया है)। यह स्तुति

---

* ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानां यन्त्रारूढ़ानि मायया॥
(गीता) "उर प्रेरक रघुवंश विभूषण। तस कहिहौं हिय हरि के प्रेरे॥"

भव उद्धारा सारा एव । संसार=जन्म मरण चक्र से उद्धार करनेवाली जितनी भी क्रियायें हैं उन सब क्रियाओं में सार भूत ही है ।

र० प्र०—ज्यों घन सुन्दर राम लिये कपि सिन्धु महा पुल बाँधि दिये ।
त्यों हिय हारक राम हिये मम बैठि प्रिया गुन गान किये ॥
जो सब संसृति मेंटि चपेटि सुखोलि महा हरि द्वार दिये ।
सोई कुमार अधार निरन्तर पार न पावत गाइ हिये ॥

'यमक' की छटा दिखाते हुये इस श्लोक में ग्रंथ की फल श्रुति कही गई है ॥११०॥

प्रकृत्या भृत्योऽहं श्वसन इह सामन्त तिलको,
मनो छत्रं पीठं हृदय शतपत्रं विकसितम् ।
सुमानां सम्राजोर्जगदहमहं पूर्वमवतो—
र्बचस्फीतं सीताऽरुण चरणयोश्चामरमिदम् ॥१११॥

अहं प्रकृत्या (सीता चरणयोः) भृत्यः (अस्मि)	मैं स्वाभाविक ही अर्थात् शास्त्रानुसार महाराजवत् श्रीसीताजी के लाल कमलवत् चरणों का दास हूँ अर्थात् चँवर झलने वाला हूँ
श्वसनः इह सामन्त तिलकः	और मेरा वायु=स्वाँस=महा प्राण ही यहाँ चरण रूपी महाराज के समीप में महामात्य=प्रधान मंत्री
मनः च्छत्रम्	है । बिशुद्ध मन ही च्छत्र है ।
विकसितं हृदय शतपत्रम् पीठम्	प्रसन्न हृदय कमल ही सिंहासन है और पहिले
अहं पूर्वं अहं पूर्वं	मैं पहिले मैं इस प्रकार कहते हुये सारे जगत की
जगतः अवतोः	रक्षा करने वाले, सम्पूर्ण पुष्पों के राजा लाल
सुमानाम्	कमल के समान श्रीसीताजी के दोनों लाल
सीता अरुण चरुणयोः	चरण ही दो सार्वभौम राजा हैं और उन चरणों पर झलने वाली उन्हीं के चरणों के गुणों से गुम्फित मेरी यह सुंदर एवं विस्तृत

इदं स्फीतं वचः चामरम् अस्ति। — यहसुन्दर एवं विस्तृत वाणी=काव्यात्मक स्तुति ही चँवर है।

१० प्र०—मैं पहिले नहिं मैं पहिले जग पालहुँ द्वौ इमि लाग डटैया।
चकवर्ति दोऊ सिय के पद में चरणानुग हौं नित चौंर चलैया॥
स्वाँस अमात्य हृदय सुसिंहासन मो मन छत्र सुछाँह करैया।
सुन्दर विस्तृत मो यह काव्य कुमार गिरा शुचि चौंर सुहैया॥

जिन महाराज पर चँवर झलती है उन महाराज का संक्षिप्त सांग परिचय इस श्लोक में दिया गया है। यहां "प्रकृत्याभृत्योऽहम्" कह कर जीव को परमात्मा का दास स्वाभाविक ही सूचित किया गया है। समस्त शास्त्रों का यही उद्घोष है कि जीव स्वभावतः भगवद्दास ही है, किंचिद्दिग्दर्शन—

"दासभूतमिदं तस्य ब्रह्माद्यं सकलं जगत्।
आत्म दास्यं हरेः स्वाम्यं स्वभावं च सदास्मर॥"
"ददाति परमां मुक्तिं सद्योमुक्तिं विशेषतः।
तेन दासेति सम्प्रोक्तं सर्वागम विशारदैः॥"
"दास्यमेवं परंधर्मं दास्यमेवं परंहितम्।
दास्येनैव भवेन्मुक्तिरन्यथा नरये ब्रजेत्॥"
"सोऽहं सोऽहं परित्यज्य दासोऽहं यो वदेत्सदा।
वैष्णवःस जगत्पूज्यो याति विष्णोः परं पदम्॥"
"न दासो वासुदेवस्य सर्वलोकेश्वरस्य ये।
तेषां हि नरके वासः कल्पायुष शतैरपि॥"
"नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापिवैश्यो नशूद्रो,
नाहं वर्णीनचगृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा॥
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृतब्धेः
सीताभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः॥"
"नैसर्गिकं तुजीवानां दास्यं विष्णोः सनातनम्।
तद्विना वर्ततेमोहात्संसारे जीव सर्वदा॥

तस्मात्तु भगवद्दास्यमात्मनां श्रुतिबोधितम् ।
दास्यं विना कृतं यत्तु तदेव कलुषं भवेत् ॥"
(सारसंग्रहे वृद्धहारीतादि वचनानि)

"न वेद यज्ञाध्ययनैर्नव्रतैश्चोपवासकैः ।
प्राप्यते वैष्णवंलोकं विनादास्येन कर्हिचित् ॥
तस्माद्दास्यं हरेर्भक्त्याभजेतानन्यमानसाः ।
प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं कर्म बन्धविमोचिनी ॥" (पद्मपुराण)

"जन्मप्रभृति दासोऽस्मि शिष्योऽस्मि तनयोऽस्मिते ।
त्वंचस्वामी गुरुर्माता पिता च मम राघव ॥" (लक्ष्मणः; वा० रा०)
दासोऽहं कौशलेन्द्रस्यरामस्याक्लिष्ट कर्मणः ।
हनूमाञ्छत्रु सैन्यानां निहंता मारुतात्मजः ॥ (वा० रा० सुं ४३ । ६)
"त्वयोपभुक्त स्रग्गन्धवासोऽलंकार चर्चितः ।
उच्छिष्ट भोजिनोदासास्तवमायां जयेमहि ॥ (भाग० ११ । ६ । ४६ उद्धवः)
सर्व लाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ॥ भाग० ११ । ११ । ३५ ॥
जेहि जेहि योनि कर्मवश भ्रमहीं । तहँ तहँ ईश देहु यह हमहीं ॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू । होउ नात यहि ओर निबाहू ॥"
"हम सब सेवक अति बड़ भागी । संतत सगुण ब्रह्म अनुरागी ॥"
"सेवक सेव्यभावविनु भवनतरिय उरगारि ।
भजिय राम सब कामतजि अससिद्धांत विचारि ॥" (रा० च० मा०)
"अब हम दास भये हैं खासे । सियवर रूप पियासे ॥
आइ दीनता बात बनी सब सिय जू की करुणा से ।
अहंकार का कूड़ा पटका वेदान्तिन के वासे ॥
ईर्षा खाजधरी गोरुन में क्रोध साँप के डासे ।
सब अवगुण निन्दक के सिरधरि नितमन बढ़त हुलासे ॥
द्वैत सदा अद्वैत कबहुँ नहिं चौड़े कहौं खुलासे ।
दास्य भाव का डंका बाजे वेदन की महिमा से ॥

मंगलमय दिशि विदिशि हमारे सकल अमंगल नाशे।
राम 'देव' के नामदीप से अन्दर भवन प्रकाशे॥
(श्रीदेवतीर्थ स्वामीकाष्ठजिह्व कृत जानकी विन्दु पद १०६)

"ब्रह्मदाशा ब्रह्मदासा ब्रह्मभे कितवाः।' (ब्रह्मसूक्त अ० ६)

"अरं दासो न मीढुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः।
(ऋग्वेद ७। ८६। ७)

"यस्यायं विश्व आर्यो दासः।' (यजुर्वेद ३३। ८२) आदि आदि।

इस स्तोत्र में आरम्भ से लेकर यहाँतक एकसौ ग्यारह श्लोक शिखरिणी छन्द हैं। शिखारिणी लक्षण "रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।" १११॥

प्रेमरत्न रचिताक्षर हेमदण्ड मण्डित मुपासक गृह्यैः।
गृह्यतां दशमुखप्रतिमल्लबल्लभाचरणचामरमेतत् ॥११२॥

इति श्री मद्रामचन्द्रचरणचन्द्रिका चकोरायमाण श्री मारुति सिद्धांत विहरमाण विद्वद्धुरीण कौन्तेयाचार्य सूनु श्रीनिवासाचार्य विरचितं श्री जानकी चरण चामर स्तोत्रं सम्पूर्णम् शुभम् मङ्गलम् भूयात्॥

प्रेमरत्नरचित	जो प्रेमरूपी रत्नों=मणियों से चित्रित पच्चीकारी की गई
अक्षर हेमदण्ड	क. ख. आदि वर्ण अथवा ब्रह्मविद्यारूपी सोनेकी दण्डी मूठ से
मण्डित एतत्	अलंकृत=बड़ी कारीगरी से विरचित है यह
दशमुख प्रति मल्ल बल्लभा चरण चामरम् उपासक गृह्यैः	रावणान्तक श्रीरामजी की प्राणप्रिया श्रीसीताजी के चरणों का चामररूप स्तोत्र उपासकों के ग्रहण करने योग्य है। अतः
भो उपासका एतत् चामरम् गृह्यताम्।	हे भगवद्दास लोगो इस चँवर को ग्रहण कीजिये।

र० प्र०–प्रेम मयी मणिचित्रित हेमकी दण्डी बनी अति सुन्दर सोहै।
स्वरव्यंजन अक्षर ब्रह्म गिरा सु अलंकृत मूँठ महामणि पोहै॥

रामप्रिया चरणों की सुचामर दे शुचि भक्ति हिये दृग जोहै।
सो नर वाणि कुमार करी पदलेहु सिया गुणभूषित यो है॥

इस अन्तिमश्लोक में चँवर के स्वरूप वर्णन पूर्वक पुनः स्तोत्र पाठ का फल कहा गया है। यह उपजातिवृत्ति का छन्द है इसका लक्षण "अन्यास्वपिमिश्रिता-सूपजातयः वदन्ति।" इस स्तोत्र में कुल ११२ श्लोक हैं जिसमें प्रथम श्लोक में युगल सरकार का ध्यान है, २ से १०६ तक १०८ श्लोकों में स्तोत्र है और अन्तिम ३ श्लोकों में चामर का स्वरूप और फलश्रुति है।

इति श्रीजानकीचरण चामरस्तोत्रस्य सरला रजः प्रच्छालिनी च टीका समाप्ता।

एकोपरि द्विसहस्राब्दे बिलम्बी माधवे सिते।
श्रीजानक्या जन्मकाले मध्याह्ने चन्द्र वासरे॥
श्रीमद्धरिनामशिष्येण मणिकूट निवासिना।
राम कुमारदासेन सरला टीका वितन्विता॥

मातु कुमार अबोध अहै शिशु तव दुलरायो।
उचित न अनुचित ज्ञान जोइ आयो सोइ गायो॥
माया वश मनमन्द भावितंत्रहु मति भोरी।
भ्रमतलगत नहि बार करत नित चूक अथोरी॥
क्षमा क्षमानो निज जननि क्षमा नन्दिनी करुण करि।
करिय क्षमा अपराध सब बत्सलता धारानि ढरि॥
सुन्दरराम सु मुनि कृपा आज्ञा आशिष पाइ।
लिखे कुमार सु नर गिरहिं सरला तिलक सुहाइ॥
नहि प्रसिद्ध विद्वान जग नाहिं भक्ति लव लेश।
केवल इक आधार यह हरिंजन कर शुचि वेष॥
भूल करत नित रहत हम भूलन को भण्डार।
करिदाया हरिजन सकल लीजै सुचित सुधारि॥

—:❀:—

श्रीमते रामानन्दाय नमः

श्रीरामबल्लभापाद पल्लवेभ्यो नमः ।

नमो नमोऽस्तु कौशलेन्द्रराघवेंद्रलालिते, प्रभालये प्रभाकर प्रवंशकीर्तिपालिके ।
प्रमोद काननेश्वरि प्रमोद मान मानसे, प्रसीद रामबल्लभे प्रदेहि पादपल्लवम् ॥१॥
अशेष विश्वस्वामिनि ह्यनन्तरूप नामिनि मुनीद्रसंतवन्दिते नृपेन्द्रमौलिकन्यके ।
सदैव रामरंगिणि सुवाम पार्श्व संगिनी, प्रसीदरामवल्ल० ॥ २ ॥
विदेहराजकन्यके सुनेत्रयैकलालिते, मृदंगवाद्यलालसे मदालसे सुगायिके ।
सखीगणैस्समावृते सुबालकेलितत्परे, प्रसीद रामबल्लभे० ॥ ३ ॥
जयार्थिभिः नृपावलीगणैकतानमण्डले, पिनाकपाणिचापजन्यसर्वदर्प खण्डिके ।
समच्च स्वच्छ दिव्यमाल मालिका प्रदायिके, प्रसीदराम वल्लभे ॥ ४ ॥
वशिष्ठजातटेऽमले प्रमुद् बने रहः स्थले, सखीगणैस्समावृते सुपुष्प तल्प संस्थिते ।
अखण्ड केलितत्परे परात्परे नरेश्वरि, प्रसीद रामवल्लभे० ॥ ५ ॥
मणीन्द्ररत्न चारुचित्र मण्डपे सुरद्रुम—स्तलेष्वनर्घमौक्तिकावृते शुभासनेऽमले ।
सहैव राघवेण संविनोद तत्परेमुहुः, प्रसीद रामवल्लभे० ॥ ६ ॥
तड़ित्समूह दीप्तिहृत्सुवर्णकान्ति लज्जिके, सुचम्पकावलेपहृत्सुमंजुकंज मालिके ।
अजादि विष्णु रुद्र सेव्य ध्येय ज्ञेय विग्रहे, प्रसीद रामवल्लभे० ॥ ७ ॥
नतोऽस्मिते शुभेक्षणे क्षणे क्षणे विलक्षणे, कृपाकटाक्षवर्षिणि कृपाम्बुपूर्णविग्रहे ।
अलक्ष्यलक्ष्यरक्षिके प्रपन्नपक्षपालिके, प्रसीदराम बल्लभे० ॥ ८ ॥
अतीवदीन पालिके शुचिस्मिते कृपालुके, दयार्णवे जगद्धिते जगत्प्रसूति कारिके ।
प्रपन्न दुःख हारिणि प्रशस्त सौख्यदायिनि, प्रसीदरामवल्लभे ॥ ९ ॥
नृपेन्द्र शेखरायमाण सीरकेतु वालिके, रसालिके सुसार्वभौम कौशलेन्द्र लालिते ।
अशेषराजमण्डली सुवन्दितांघ्रि पंकजे, प्रसीद रामलवल्लभे प्र० ॥ १० ॥
सुमंजुकुंजुलद्रुमालबाल पुष्प पुष्पिते, सुरत्नवेदिकान्तरे प्रभामये महाद्भुते ।
अचिन्तितार्थ दान दक्ष हस्तपद्मशोभिते, प्रसीदरामबल्लभे प्र० ॥ ११ ॥
अनर्घ्य रत्नहाटकैर्विनिर्मितैः सुभूषणैः, सुनूपुरादि सिंजितैः कलस्वनैः पदाम्बुजम् ।
स्मराम्यतीवमंजुलं नृपेन्द्रस्नेहलालितम्, प्रसीदरामबल्लभे प्र० ॥ १२ ॥

अबोधसम्प्रबोधसौख्यऋद्धि सिद्धि सेविते, सुरासुरेन्द्र शीर्ष रत्नराजराजिशोभिते।
परस्परं भुजांशयोर्निबद्धस्नेह पाशकै—र्विरोचमानसानुगं स्मरामि ब्रह्मराघवम् ॥१३
इति श्रीजानकी देव्या पाद पल्लव संस्तवः। कृतोरामकुमारेण ध्येयोज्ञेयश्चसर्वदा

टीकाकार की श्रीगुरु परम्परा

१ सर्वेश्वर श्रीरामजी महाराज, २ जगज्जननी श्रीसीताजी महारानी ३ श्रीहनूमान्‌जी, ४ श्रीब्रह्माजी, ५ श्रीवशिष्ठजी, ६ श्रीपराशरजी, ७ श्रीवेदव्यासजी (द्वैपायन कृष्ण), ८ श्रीशुकदेवजी, ९ श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी (बोधायन) १० श्रीगंगाधराचार्यजी, ११ श्रीसदाचार्यजी, १२ श्रीरामेश्वराचार्यजी, १३ श्रीद्वारानन्दाचार्यजी, १४ श्रीदेवानन्दाचार्यजी, १५ श्रीश्यामानन्दाचार्यजी १६ श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी, १७ श्रीचिदानन्दाचार्यजी, १८ श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी १९ श्रीश्रियानन्दाचार्यजी, २० श्रीहर्य्यानन्दाचार्यजी, २१ श्रीराघवानन्दाचार्यजी (श्रीमठ काशी) २२ भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजी, २३ श्रीअनन्तानन्दाचार्यजी २४ चिरंजीवी पयोहारी श्रीकृष्णदासजी (गलता-जयपुर) २५ श्रीअग्रदासजी (द्वाराचार्य) (रेवासा जयपुर) २६ श्रीरामभगवानदासजी, २७ श्रीलक्ष्मण दासजी, २८ श्रीमस्तरामदासजी, २९ श्रीलक्ष्मीरामदासजी, ३० श्रीनन्दलाल दासजी (संडीला), ३१ श्रीचरणदासकी (योधरामजी), ३२ श्रीहरिदासजी ३३ विन्द्वाचार्य दीनबन्धु श्रीरामप्रसादाचार्यजी (बड़ी जगह श्रीअयोध्याजी) ३४ श्रीरामनिवाजदासजी (बगही-गोरखपुर) ३५ श्रीमाणिकरामदासजी ३६ श्रीसदा रामदासजी रामायणी (रामायणीजी की कुटिया 'नवलवाटिका' प्रमोदवन श्री अयोध्याजी) ३७ श्रीरामदयालदासजी फलाहारी तपस्वी ३८ अनंत श्रीस्वामी श्रीहरिनामदासजी महाराज (वरविश्रामवाग मणि पर्वत श्रीअयोध्याजी) ३९ मानसतत्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी, वेदान्त भूषण, साहित्य रत्न (श्रीरामग्रंथागार मणि पर्वत श्रीअयोध्याजी)।

महर्षि वाल्मीकि शोध संस्थान
16673
श्री मणिराम दास छावनी सेवा ट्रस्ट

मुद्रक—महेन्द्रप्रसाद गुप्त श्रीशंकर मुद्रणालय, हौदीगली, बनारस १

टीकाकार की अन्य कृतियाँ

प्रकाशित

१—श्रीराममन्त्रार्थ
२—मानस पूजनपद्धति
३—दो विभूतियाँ (अप्राप्य)
४—सखी गीता
५—धर्मरथ
६—मानस सिद्धांत

अप्रकाशित

१—वेदों में रामकथा
२—मानस मनन
३—मानस रत्न मंजूषा
४—मानससमाधानरत्नावली
५—सरल हवन पद्धति
६—भक्तमाल भूमिका भाष्य
७—भक्त भास्कर (३०० छप्पयों में)
८—मंगलपचीसी
९—संवादपचीसी
१०—स्तोत्रमंजरी

प्रकाशित पुस्तकों का प्राप्तिस्थान—

मानस संघ, पो०, रामवन, जिला-सतना (बिन्ध्यप्रदेश)